शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 8 अंक : 6 1 जनवरी 2016

(पौष-माघ, विक्रम संवत् 2072)

संरक्षक
मुकुन्द कुलकर्णी
प्रो.के.नरहरि

❖

परामर्श
डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल
प्रो. जगदीश प्रसाद सिंघल

❖

सम्पादक
प्रो. सन्तोष पाण्डेय

❖

उप सम्पादक
विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी
भरत शर्मा

❖

संपादक मंडल
प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय
डॉ. नाथू लाल सुमन
डॉ. एस.पी. सिंह
डॉ. ओमप्रकाश पारीक

❖

प्रबन्ध सम्पादक
महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक
बजरंग प्रसाद मजेजी

प्रेषण प्रभारी
बसन्त जिन्दल
नौरंग सहाय भारतीय
कार्यालय प्रभारी
आलोक चतुर्वेदी 9782873467

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग, जयपुर (राज.) 302001
दूरभाष: 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13, कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली-110053
दूरभाष: 011-22914799

E-mail:
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at:
www.shaikshikmanthan.com

एक प्रति 20/- वार्षिक शुल्क 200/-
आजीवन (दस वर्ष) 1500/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पाठ्यचर्या : समग्र विकास की आधार शिला ❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

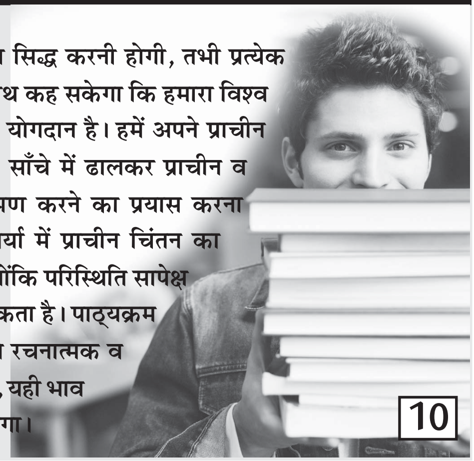

हमें अपनी पुरातन श्रेष्ठता सिद्ध करनी होगी, तभी प्रत्येक भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ कह सकेगा कि हमारा विश्व को विभिन्न विषयों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमें अपने प्राचीन विपुल ज्ञान, को आधुनिकता के साँचे में ढालकर प्राचीन व अर्वाचीन शिक्षा पद्धति का मिश्रण करने का प्रयास करना होगा। हमें पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या में प्राचीन चिंतन का सामंजस्य स्थापित करना होगा क्योंकि परिस्थिति सापेक्ष परिवर्तन आज समय की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या को रोचक बनाने से रचनात्मक व सृजनात्मक सोच का विकास होगा, यही भाव देश के समग्र विकास का वाहक होगा।

10

अनुक्रम

4. समयानुकूल हो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या – सन्तोष पाण्डेय
6. पाठ्यक्रम में मौलिक परिवर्तन आवश्यक – डॉ. रेखा भट्ट
8. पाठ्यचर्या – देश की शिक्षा व्यवस्था का दर्पण – बजरंग प्रसाद मजेजी
13. शिक्षा का डीएनए – पाठ्यचर्या – विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी
15. ऊँची उड़ान के लिए तैयार है भारतीय शिक्षा – बजरंगी सिंह
17. Syllabus and Curriculum – Prof. A. K. Gupta
23. शिक्षित भारत का सपना – रवि शंकर
25. जीवन मूल्यों का क्षरण चिन्ता का विषय – प्रकाश वया
27. इसे हमें स्कूल कहना पड़ता है – अरविंद गुप्ता
29. मूल अधिकार बनाने की चुनौती – गिरीश्वर सिंह
31. शिक्षा : संवादहीनता के परिसर – रमेश दवे
34. असमानता की ओर तेज कदम – बीरेंद्र सिंह, ...
37. मस्तक धूल चढ़ाने उनको झुक जाते आकाश – साकेन्द्र प्रताप वर्मा
39. नई शिक्षा नीति-2015 : सुझाव
42. गतिविधि

Education in Free Bharat

❑ Dr. TS Girishkumar

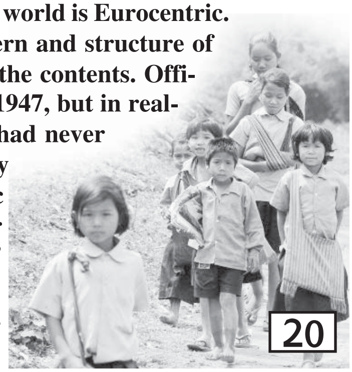

Presently, education all over the world is Eurocentric. Every one follows the European pattern and structure of education and most people also copy the contents. Officially the freedom of Bharat came in 1947, but in reality, freedom for education in Bharat had never happened. There were efforts from many nationalists to make an Indo centric education, but they were mostly either ridiculed or suppressed. 'Progressive' people wanted to be in step with whatever is going on in the rest of the world, thereby remaining just copy cats.

20

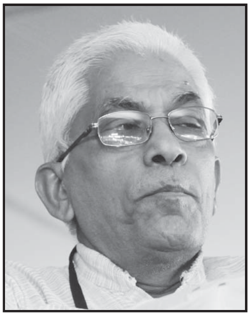

वास्तव में पाठ्यचर्या का निर्धारण कोई समय निरपेक्ष व रूढ़ दृष्टिकोण वाला नहीं हो सकता है। परिवर्तनशील समाज में पाठ्यचर्या निर्धारण के मार्गदर्शक तत्त्व भी समयानुकूल होने चाहिये, देश, काल व परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिये। परन्तु भारत जैसे विशाल व विविधता युक्त समाज के लिये एक समान निर्धारक तत्त्वों वाली पाठ्यचर्या निर्धारक मार्गदर्शक नीति संभव है? यह एक जटिल विषय है, जिस पर मनन आवश्यक है भारत एक अतिप्राचीन संस्कृति वाला विविधताओं में एकता वाला देश है, जिसका अपना जीवन दर्शन है, समृद्ध व सुनिश्चित ज्ञान परंपरा है। यह दुर्भाग्यजनक है कि इस समृद्ध सांस्कृतिक व शैक्षिक विरासत को अब तक शिक्षा नीतियों में वह सम्मान नहीं मिल सका है, जिसकी वह पात्र है।

समयानुकूल हो राष्ट्रीय पाठ्यचर्या

❑ **सन्तोष पाण्डेय**

संपादकीय

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति को अपनाने के पश्चात् देश के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन हुये हैं। इन्हें दृष्टिगत रख कर ही नई शिक्षा नीति अपनाने की प्रक्रिया अन्तिम चरण में है। आर्थिक क्षेत्र में निजी उद्यम, पूँजी को प्रेरित करने के बड़े परिणाम आये हैं। शिक्षा जगत इससे अछूता नहीं है। शिक्षा का बड़े पैमाने पर प्रसार हुआ है। निजी उद्यम ने बड़े पैमाने पर शिक्षा के क्षेत्र में प्रवेश किया है। इनका प्रभाव इतना बढ़ा है कि शिक्षा एक बड़ी सीमा तक बाजार व्यवस्था से संचालित लगी है। शिक्षा शनैः शनैः देश व समाज की जिम्मेदारी के स्थान पर लाभ के उद्देश्य से नियंत्रित व्यवस्था के अन्तर्गत आती जा रही है। शिक्षा, समाज सेवा व सामाजिक दायित्व के स्थान पर लाभप्रद उद्योग में बदल रही है। अत्यन्त मँहगी शिक्षा मध्यम वर्ग की कमर तोड़ रही है। देश में 30 वर्षों बाद किसी एक दल के बहुमत वाली सरकार बनी है। पूर्ववर्ती सरकारें एक पक्षीय विचार धारा से ही प्रभावित व नियंत्रित होती रही है। पश्चिमी देशों की ज्ञान व्यवस्था को श्रेष्ठ व अन्तिम माना जाता था। ऐसा वातावरण था कि भारत के प्राचीन ज्ञान-गौरव का उल्लेख तक करना देश को अन्धकारयुक्त काल में ले जाने समान करार दिया जाता था। पश्चिमी शिक्षा व्यवस्था व दर्शन के साथ-साथ वामपंथी विचार भी हावी रहे। सर्वधर्म समभाव के स्थान तथाकथित धर्म निरपेक्षता के नाम पर तुष्टीकरण की नीति अपनायी गई है। जातिगत व वर्गगत असमानताओं को दूर करने की दृष्टि से अपनायी गयी आरक्षण व्यवस्था 'योग्यता आधारित' ज्ञान व्यवस्था को क्षति पहुँचा रही है। देश में एक प्रकार से दोहरी शिक्षा व्यवस्था जड़ जमा चुकी है। पहली वह शिक्षा व्यवस्था है, जो पब्लिक स्कूलों, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों, विशिष्ट संस्थानों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा जिससे इसकी कीमत चुकाने में समर्थ वर्ग ही लाभ उठा पाता है तो दूसरी ओर बड़ा वर्ग कमजोर, वंचित, साधन हीन वर्ग के बच्चे हैं, जो सरकारी शिक्षण संस्थानों जिन्हें साधनहीन, स्तरहीन व नौकरी की चाह वाले शिक्षक वर्ग पर निर्भर स्कूलों व कॉलेजों में पढ़ने को विवश है। इन समस्त कमियों युक्त शिक्षा व्यवस्था को एक मजबूत सरकार ही सुधार सकती है। वर्तमान सरकार इसी दिशा में कार्य करते हुये

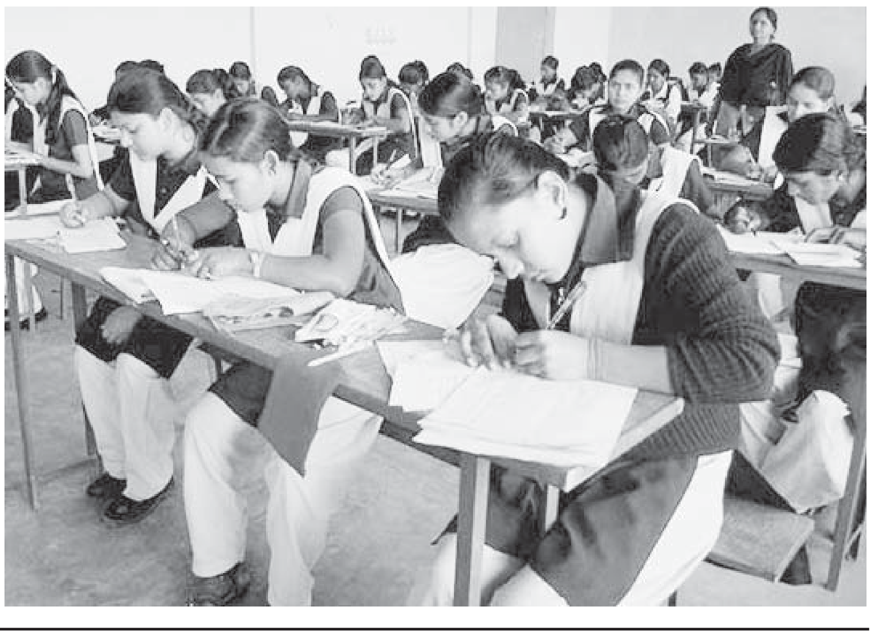

नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति प्रस्तुत करने वाली है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति की सफलता और उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु पर्याप्त वित्तीय साधन, प्रतिबद्ध प्रशिक्षित व कुशल शिक्षक वर्ग सुस्पष्ट उद्देश्य व उनकी प्राप्ति की रणनीति के साथ-साथ सुनिश्चित पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रमों का होना अति आवश्यक है। अच्छी पाठ्यचर्या के माध्यम से ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है, व राष्ट्रीय अपेक्षाओं और आकाँक्षाओं को पूरा किया जा सकता है। पाठ्यचर्या के महत्त्व को इसी तथ्य से जाना जा सकता है कि स्वतंत्रता के पूर्व मैकाले द्वारा ब्रिटिश शासन को पुष्ट करने वाली पाठ्यचर्या को अपनाया गया तो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् सिद्धान्ततः तो संविधान के प्रावधानों से युक्त पाठ्यचर्या पर बल दिया गया, परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से मैकालयीय शिक्षा व्यवस्था बनी रही जिसमें पाठ्यचर्या का निर्धारण भले ही भारतीय शिक्षाविदों के हाथ में रहा हो, परन्तु उनका दृष्टिकोण पश्चिमी ही रहा। फलतः पाठ्यचर्या के ढाँचे में बड़ा परिवर्तन नहीं आया। पाठ्यचर्या के निर्धारण में राजनीति की दखलंदाजी बढ़ती ही चली गयी। राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्र प्रेम, स्वाभिमान, स्वावलंबी शिक्षा व्यवस्था में आस्था रखने वाले व्यक्तियों के उभार के साथ पाठ्यचर्या का निर्धारण शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बना। देश में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन की सरकार के गठन के साथ ही इस विचारधारा के अनुरूप पाठ्यचर्या में परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। सरकारों के बदलने के साथ ही पाठ्यचर्या में परिवर्तन आने लगे। पाठ्यचर्या में परिवर्तन का विषय राजनीतिक विवाद का एक बड़ा बिन्दु बना। यह विवाद सामाजिक विज्ञान के विषयों में मुख्य रूप से छाया रहा। पाठ्यचर्या व पाठ्यक्रमों में सरकार बदलने के साथ ही बदलाव आये व पाठ्यपुस्तकों में परिवर्तन हुये। सरकारों का यह दृष्टिकोण तर्कसंगत व राष्ट्रीय हितों के अनुकूल नहीं हो सकता है।

वास्तव में पाठ्यचर्या का निर्धारण कोई समय निरपेक्ष व रूढ़ दृष्टिकोण वाला नहीं हो सकता है। परिवर्तनशील समाज में पाठ्यचर्या निर्धारण के मार्गदर्शक तत्त्व भी समयानुकूल होने चाहिये, देश, काल व परिस्थितियों के अनुकूल होने चाहिये। परन्तु भारत जैसे विशाल व विविधता युक्त समाज के लिये एक समान निर्धारक तत्त्वों वाली पाठ्यचर्या निर्धारक मार्गदर्शक नीति संभव है? यह एक जटिल विषय है, जिस पर मनन आवश्यक है? भारत एक अतिप्राचीन संस्कृति वाला विविधताओं में एकता वाला देश है, जिसका अपना जीवन दर्शन है, समृद्ध व सुनिश्चित ज्ञान परंपरा है। यह दुर्भाग्यजनक है कि इस समृद्ध सांस्कृतिक व शैक्षिक विरासत को अब तक शिक्षा नीतियों में वह सम्मान नहीं मिल सका है, जिसकी वह पात्र है। अब समय आ गया है, जब शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति की दृष्टि से पाठ्यचर्या में इसे समुचित स्थान दिया जाय। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रमुख उद्देश्य राष्ट्र गौरव व राष्ट्र प्रेम को प्रेरित करने वाली शिक्षा, भारतीय व संस्कृति से परिचित कराते हुये, स्वाभिमान व स्वावलंबन को प्रेरित करने, ज्ञान को आत्मसात करने के साथ-साथ व्यावहारिक व उपयोगी बनाने हेतु सैद्धान्तिक शिक्षा के साथ प्रायोगिक व कौशल विकास को प्रेरित करने, वैज्ञानिक दृष्टिकोण को प्रेरित करने, रोजगार के अवसरों को सृजित करने वाले मानव संसाधन विकसित करने, विश्व भर में कहीं भी उपलब्ध ज्ञान को उपलब्ध कराने के हो सकते हैं।

देश की विविधताओं एवं स्थानीय संभावनाओं को दृष्टिगत कर उपर्युक्त उद्देश्यों की प्राप्ति को संभव बनाने वाली पाठ्यचर्या को अपनाना एवं इसके आधार पर पाठ्यपुस्तकों को तैयार किया जाना चाहिये। शिक्षा समवर्ती सूची का विषय है, जिसमें राज्यों को पर्याप्त अधिकार प्राप्त है। ऐसे में सम्पूर्ण देश के लिये एक समान पाठ्यचर्या को अपनाना व्यावहारिक नहीं होगा। परन्तु शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति को दृष्टिगत कर विस्तृत पाठ्यचर्या की निर्देशक-नीति बनाई जानी चाहिये। इसी पाठ्यचर्या निर्देशक नीति के आधार पर ही राज्यों द्वारा पाठ्यचर्या का निर्धारण करना उपयुक्त होगा। स्थानीय क्षमताओं व संभावनाओं के लिये पर्याप्त छूट का प्रावधान होना आवश्यक है। स्वाभाविक है कि सम्पूर्ण देश के लिये एक समान एकीकृत पाठ्यक्रम अव्यावहारिक ही रहेगा। अनेक राज्यों में पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन पर एकाधिकार जमा रखा है। यह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के विपरीत है। पाठ्यक्रम के आधार पर मान्य सामग्री वाली पुस्तकों को प्रकाशित करने में स्वस्थ प्रतियोगिता रहनी चाहिये। मातृभाषा में ही प्राथमिक से उच्च शिक्षा तक पुस्तकों का प्रकाशन होना चाहिये। पाठ्यचर्या की रचना इस प्रकार की होनी चाहिये, जिसमें सहायक पुस्तकों व पास-बुक्स की संभावना न्यूनतम हो। पाठ्यचर्या में इस प्रकार के उपाय होने चाहिये जो विषयवस्तु की समझ को प्रेरित करने वाली हो। यह प्राप्तांकों के अधिकतम प्रतिशत की दमघोंटू व तनाव को बढ़ाने वाली नहीं होनी चाहिये। परन्तु मात्र इसी आधार परीक्षा व्यवस्था को पूरी तरह नकारना भी व्यावहारिक नहीं है। इन सभी विशिष्टताओं से युक्त पाठ्यचर्या निर्धारण के साथ-साथ यह भी आवश्यक है, कि पाठ्यचर्या राष्ट्रीय गौरव, राष्ट्रीयता के प्रतीकों के प्रति सम्मान भाव, स्वावलम्बन, रोजगारपरक कौशल को प्रेरित करने वाली, नैतिक व भारतीय जीवन मूल्यों को व्यक्ति के व्यक्तित्त्व में समाहित करने वाली होनी चाहिये, पाठ्यचर्या भारतीय ज्ञान परंपरा को वैश्विक ज्ञान से जोड़ने वाली हो, तब ही यह समयानुकुल भारतीय पाठ्यचर्या कहला सकेगी।❑

पाठ्यक्रम में मौलिक परिवर्तन आवश्यक

आधुनिक तकनीक के माध्यम से विद्यार्थी के लिए ज्ञान एवं जानकारी के सभी मार्ग खुले हैं। विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए मात्र पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर नहीं हैं। सूचना क्रान्ति के पश्चात् तो विद्यार्थी की रुचि व क्षमता के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के अनेक साधन उपलब्ध हैं। अतः विद्यालय जाना ही शिक्षित कहाने का मापदण्ड नहीं है। योग्यता व अनुभव रोजगार प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रामाणिक माने जाते हैं। व्यापक होती वर्तमान शिक्षण व्यवस्था के साथ यदि पाठ्यक्रम को उद्देश्यपूर्ण एवं प्रभावी बनाया जावे तो विद्यार्थी वास्तव में शिक्षा से लाभान्वित हो सकेंगे।

❑ **डॉ. रेखा भट्ट**

वर्तमान युग में भारत सहित विश्व के सभी देश तकनीक, औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, नगरीयकरण एवं आधुनिकता से प्रभावित है। सभी देशों में शिक्षा आज भी पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तकों पर ही आधारित है। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, सुनियोजित एवं संतुलित पाठ्यक्रम पर निर्भर करती है। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम विद्यार्थी की क्षमताओं, आवश्यकताओं एवं अपेक्षाओं को पूर्ण करने की व्याख्या के साथ-साथ विद्यार्थी द्वारा मूलभूत ज्ञान एवं कौशल प्राप्त करने के लक्ष्यों का भी उल्लेख करता है।

प्रचलित भारतीय शिक्षण व्यवस्था में कई दशकों से चले आ रहे 'पाठ्यक्रम' हमारी वर्तमान आवश्यकताओं और भारतीयता से दूर है। अतः भारत में आधुनिक शिक्षण पद्धति के मापदण्डों के अनुसार पाठ्यक्रम में नवाचारों को प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम में सृजनात्मकता एवं मौलिक योगदान को बढ़ावा देकर ही शिक्षा के अपेक्षित स्तर को पाया जा सकता है। इस हेतु पाठ्यक्रम तय करने से पहले शिक्षा मनोविज्ञान के आधार पर यह तय किया जाए कि-

- किस आयु वर्ग के विद्यार्थी कितना सीख सकते हैं?
- तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था में क्या सीखना-सिखाना आवश्यक है?
- उनके लिए कौनसी मूलभूत साधन-सुविधाएँ उपलबध करवायी जा सकती हैं?

वर्तमान भारतीय शिक्षण पद्धति में आज भी पाठ्यक्रम एवं रोजगार के बीच समन्वय नहीं है। भारत में तकनीकी एवं औद्योगिक विकास के साथ विविध प्रकार के रोजगार उत्पन्न होते जा रहे हैं किन्तु रोजगार से जुड़े अनगिनत विषयों में व्यापक अध्ययन हेतु पृथक पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं हो सके हैं। औद्योगिक एवं तकनीकी प्रगति के बढ़ते प्रभाव में इन क्षेत्रों में रोजगार प्राप्ति के मापदण्ड बदल रहे हैं। अतः शिक्षण पद्धति में परिवर्तन के लिए पाठ्यक्रम में सुधार अपेक्षित है। आधुनिक शिक्षण पद्धति में स्मरण शक्ति पर आधारित ज्ञान का आकलन पर्याप्त नहीं है। अतः ऐसे पाठ्यक्रम निर्माण की आवश्यकता है, जिनसे विद्यार्थियों में जटिल समस्याओं को सुलझाने व उनके उचित समाधान खोजने की योग्यता विकसित हो सके। सामाजिकता एवं उद्यमिता से जुड़े शोध में नई सम्भावनाओं को ज्ञात करने की क्षमता का विकास हो सके। पाठ्यक्रम इस प्रकार विकसित हो कि विद्यार्थी तार्किकता एवं विश्लेषणिक दक्षता प्राप्त करने में सक्षम बने।

आधुनिक तकनीक के माध्यम से विद्यार्थी के लिए ज्ञान एवं जानकारी के सभी मार्ग खुले हैं। विद्यार्थी ज्ञानार्जन के लिए मात्र पाठ्यपुस्तकों पर निर्भर नहीं हैं। सूचना क्रान्ति के पश्चात् तो विद्यार्थी की रुचि व क्षमता के अनुसार शिक्षा प्राप्ति के अनेक साधन उपलब्ध हैं। अतः विद्यालय जाना ही शिक्षित कहाने का मापदण्ड नहीं है। योग्यता व अनुभव रोजगार प्राप्ति के लिए पर्याप्त प्रामाणिक माने जाते हैं। व्यापक होती वर्तमान शिक्षण व्यवस्था के साथ यदि पाठ्यक्रम को उद्देश्यपूर्ण एवं प्रभावी बनाया जावे तो विद्यार्थी वास्तव में शिक्षा से लाभान्वित हो सकेंगे।

ब्रिटिशकाल में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से केवल उच्च वर्ग को शिक्षा देने की नीति के दुष्प्रभाव अभी तक भारतीय शिक्षा पद्धति में दिखाई देते हैं। अंग्रेजों की इस शिक्षा नीति के कारण अंग्रेजी उच्च अभिजात्य वर्ग का प्रतीक बन गई और इस कारण शिक्षण द्वारा सामाजिक विभाजन हो गया तथा शिक्षा देश की उन्नति का साधन नहीं बन सकी। अंग्रेजी भाषा की श्रेष्ठता से ग्रस्त मानसिकता के कारण शिक्षा के क्षेत्र में स्वतः चिन्तन की प्रक्रिया समाप्त हो गई। सन् 1950 के बाद देश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा एवं शिक्षा में सुधार के लिए बने आयोग, बोर्ड एवं संस्थाएँ सभी एक ही विकल्प अपनाते रहे - विभिन्न प्रकार के विदेशी पाठ्यक्रम भारत में यथावत लागू कर देना।

प्राथमिक शिक्षा वैयक्तिक रूप से महत्त्वपूर्ण होती है। वर्तमान शिक्षण पद्धति में बालक के मानसिक विकास को ही प्राथमिकता दी जाती है। शारीरिक, नैतिक व सांस्कृतिक विकास भी प्रारम्भिक अवस्था में अवश्यम्भावी है। गत कई दशकों से तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप जनसाधारण, कृषक,

श्रमिक आदि वर्गों के लिए अक्षर ज्ञान व गणित का प्राथमिक ज्ञान पर्याप्त माना जाता था। किन्तु आधुनिक शिक्षा में स्वास्थ्य, अध्यात्म एवं जीवन मूल्यों को बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल पाठ्यक्रम में समायोजित करना होगा। प्रारम्भिक शिक्षण के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित करने, आपसी प्रतिस्पर्द्धा एवं प्रतिद्वन्द्विता से मुक्त, आत्माभिव्यक्ति के अवसर प्रदान करने हेतु आपस में समायोजन व सहयोग का भाव विकसित करने के प्रयास सम्बन्धी योजनाएँ पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट की जाए। प्रारम्भिक शिक्षण से ही पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति, परम्परा व इतिहास के ज्ञान का समावेश होगा तभी भावी आदर्श नागरिक का निर्माण होगा।

माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी में सामाजिक दृष्टिकोण विकसित करने तथा स्वावलम्बन पर केन्द्रित पाठ्यक्रम का प्रारूप हो। देश के आर्थिक व सामाजिक परिवर्तनों का आधार यही शैक्षणिक अवस्था है जब विद्यार्थी परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपना योगदान सुनिश्चित करता है। औद्योगिक, तकनीकी, व्यावसायिक, वाणिज्यिक आदि सभी क्षेत्रों के अनुरूप, आधुनिकतम, श्रेष्ठतम एवं बुनियादी पाठ्यक्रम से परिपूर्ण शिक्षा विद्यार्थी को मिलेगी तो विदेशी शिक्षण पद्धति पर निर्भरता नहीं रहेगी। माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर तकनीकी एवं औद्योगिक विद्यालय तथा वाणिज्यिक विद्यालय खोले जाए और पृथक पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें निर्धारित हो तो प्रत्येक क्षेत्र में स्वत: शैक्षणिक उत्कृष्टता बढ़ेगी। माध्यमिक, उच्च माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पारिवारिक कार्यों में सहयोग देने वाले छात्रों के लिए अंशकालिक विद्यालयों का प्रावधान रखा जाए और उनके लिए अंशकालिक पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें व समय सारणी निर्धारित करें।

उच्च शिक्षा में गुणवत्तापूर्ण और उच्च स्तरीय पाठ्यक्रम बनें, इसके लिए पूर्ण स्वायत्तता आवश्यक है। पाठ्यक्रम निर्धारण किसी सरकारी तंत्र या राजनीति से प्रभावित न हो, शिक्षण संस्थान द्वारा समाज के श्रेष्ठ शिक्षाविदों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा गठित दल का नियंत्रण हो। ये स्वायत्त शिक्षण संस्थान एक ही विषय पर केन्द्रित हो एवं विश्व स्तर की उत्कृष्ट सेवाएँ प्रदान करें। इन केन्द्रों पर निर्धारित विषय से जुड़ा प्रत्येक पहलू विद्यार्थी को एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाए तो विद्यार्थी को उस विषय पर स्वतंत्र एवं गहन अध्ययन करने तथा समीक्षा करने का अवसर प्राप्त होगा। उच्च अध्ययन को पूर्ण समय न दे पाने के कारण शोध के स्तर पर भी विद्यार्थी सतही जानकारी ही प्राप्त कर पाते हैं। पाठ्यक्रम में स्थानीय समुदायों को शिक्षा व कौशल में प्रशिक्षण को स्थान देने से, सभी स्थानों के समुदायों के ज्ञान व क्षमताओं का उपयोग समाज निर्माण में हो सकेगा। पाठ्यक्रम में उचित परिवर्तन द्वारा शैक्षिक संस्थानों का समाज के साथ सामंजस्य होगा तभी शिक्षा का समाज के हित में योगदान होगा। उच्च शिक्षा रोजगार प्रदान करने तक सीमित न रहे। सामान्य, वोकेशनल अथवा व्यावसायिक सभी पाठ्यक्रमों में नवीन ज्ञान का सृजन एवं जीवन के लक्ष्यों का अन्वेषण करने के प्रयासों को जोड़ें। प्रस्तावित शोधों की सामाजिक उपयोगिता से सम्बन्धित मापदण्ड पाठ्यक्रम में समाहित किये जाए।

पाठ्यक्रम मात्र पठन-पाठन की प्रक्रिया ही नहीं है। यह शिक्षा का प्रबल आधार है। यह विद्यार्थी के जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करने एवं उन लक्ष्यों की प्राप्ति के मार्ग को निर्दिष्ट करने में सहायक होता है। किसी भी देश की शिक्षा का पाठ्यक्रम उस देश की संस्कृति, प्रकृति एवं संसाधनों के अनुरूप हो तभी वहाँ का विद्यार्थी राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय चुनौतियों का सामना करने में सक्षम होगा।

पाठ्यक्रम पर ही पाठ्यपुस्तकों का महत्त्व निर्भर करता है। यदि भारतीय दर्शन व चिन्तन पर आधारित पाठ्यक्रम होगा तो भारतीय स्वभाषी पाठ्यपुस्तकों का महत्त्व बढ़ेगा और तभी पाठ्यपुस्तकें विद्यार्थी की जीवनचर्या में सम्मिलित हो सकेगी। मूल्यपूरक संस्कार, बौद्धिक, आध्यात्मिक अनुप्रयोग, पर्यावरण संरक्षण ऐसे क्षेत्र हैं जो भारतीय जीवन पद्धति के महत्वपूर्ण अंग थे किन्तु मीडिया व तकनीक से सामाजिक जीवन प्रभावित हुआ है। अत: पाठ्यक्रम में आधुनिक तकनीक द्वारा इन क्षेत्रों में जीवन मूल्यों का शिक्षण सम्भव नहीं। अत: इन्हें पाठ्यक्रम में समाहित कर पुन: सामान्य जीवन पद्धति में क्रियान्वित किया जा सकता है। सामाजिकता, सहभागिता विमर्श, चर्चा आदि को प्रत्यक्ष रूप से परिसंवाद एवं कार्यशाला के रूप में पाठ्यक्रम में समाहित कर तकनीकी स्पर्धा में भारतीय शिक्षण पद्धति स्थायी हो सकेगी।❑

(व्याख्याता (रसायन शास्त्र), राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर)

पाठ्यचर्या - देश की शिक्षा व्यवस्था का दर्पण

❑ बजरंग प्रसाद मजेजी

किसी भी देश की शिक्षा प्रणाली की रचना उसके अपने दार्शनिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं के सुदृढ़ धरातल पर होती है। उसमें देश की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं की झलक भी होती है। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के मानक भी बदलते हैं। शिक्षण का सीधा सम्बन्ध शिक्षकों से है, इसलिए शिक्षा प्रणाली में शिक्षक की शिक्षण विद्या में भी परिवर्तन की अपेक्षा रहती है। ऐसे में वर्तमान शिक्षा प्रणाली पाठ्यक्रम, शिक्षक एवं शिक्षार्थी के मध्य समन्वय होना आवश्यक है। वर्तमान तकनीकी युग में पाठ्यक्रम और विद्यार्थी, शिक्षक से जैसी अपेक्षा रखते हैं, शिक्षक उसकी पूर्ति नहीं कर पा रहा है। शिक्षा की परम्परागत प्रणाली हमारी वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम नहीं है। वैश्वीकरण के युग में हमें बालक की योग्यता की पहचान नयी प्रविधि के साथ करनी है, जो हमारी सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं को सक्षमता के साथ निष्पादित कर सके। अधिकतर शिक्षक पारम्परिक शिक्षण पद्धति से मात्र पाठ्यपुस्तक से शिक्षण करा रहे हैं, जिसके कारण पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम एवं शिक्षार्थी के मध्य समन्वय का अभाव होना स्वाभाविक है। इस कारण शिक्षार्थी पर देय शिक्षा का एकांगी प्रभाव पड़ता है। बालक मात्र विषय की जानकारी प्राप्त कर लेता है। परन्तु, उसके व्यावहारिक पक्ष से अनभिज्ञ रहता है।

प्राय: पाठ्यक्रम निर्माण की प्रक्रिया हडबड़ी में किये जाने के कारण स्थानीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं, सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक दृष्टिकोण के साथ पाठ्यक्रम सम्बन्धी निर्णयों को प्रभावित करते हैं। जल्दबाजी में सुविचारणीय तरीके से, योजनाबद्ध कार्य नहीं हो पाता। नवीन सामाजिक सरोकार, साक्षरता, पर्यावरण शिक्षा, परिवार प्रणाली, उपभोक्ता शिक्षा, पर्यटन शिक्षा, मानवाधिकार शिक्षा, विधि - जनसंख्या शिक्षा, भूमंडलीय शिक्षा जैसे विषयों की अनदेखी हो जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 एवं प्रारंभिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या एक रूपरेखा 1988 में शिक्षा के मुख्य सरोकारों और चिंताओं को व्यक्त किया गया। यह स्वीकार किया गया कि पाठ्यक्रम के भार को घटाना, भारी पाठ्यक्रम के कारण बालकों में तनाव का कारण रहता है। इस हेतु माना गया कि अनावश्यक विषय-वस्तुओं, संदेहात्मक तथ्यों, अवधारणाओं, रटने की प्रवृत्ति जैसे पाठों को हटाने होंगे। यह भी विचारा गया कि नवाचार और

एक सार्थक पाठ्यचर्या को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और शिक्षार्थी की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं की उसमें झलक मिलनी चाहिए। इस हेतु तीन आधार स्तंभ माने गये- प्रासांगिकता, समानता और उत्कृष्टता। यह स्वीकार किया गया कि पाठ्यचर्या निर्माण आवश्यक रूप से एक अंतहीन प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से शिक्षा में गुणात्मक विकास की सतत खोज की जाती है। इस दृष्टि से यह कोई जड़ प्रक्रिया न होकर एक गतिशील आयाम है। तत्कालीन पाठ्यक्रम के बारे में कहा गया कि भारत में ऐसे कई व्यक्ति हैं जो यहाँ की प्रगति से अनभिज्ञ हैं। वे न केवल अतीत की उपलब्धियों से अनभिज्ञ हैं, अपितु स्वदेशी ज्ञान में निहित विराट शक्तियों, उसकी गहराइयों, प्रासांगिकता से भी अनभिज्ञ है।

मूल्यांकन प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक है। एक समग्र प्रणाली अपनाकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए। इसी आधार पर नये पाठ्यक्रम, नई पाठ्यपुस्तकें बनाई गई। जो आधुनिक माँग के आधार पर छात्रों को ज्ञान के सृजन के लिए अभिप्रेरित करे। यह भी सुनिश्चित किया गया कि पढ़ाई में छात्र केवल पाठ्यपुस्तकों तक सीमित न रहे। अपितु वे उसके बाहर कुछ देखें, सुनें और पढ़ें और उस पर वार्तालाप करें। 1988 के दस्तावेज में यह कहा गया कि पाठ्यक्रम का निर्धारण, क्रियान्वयन, मूल्यांकन, आवश्यक संशोधन सतत चलता रहे तभी शिक्षक भी शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त कर शिक्षा व्यवस्था को सशक्त वैज्ञानिक एवं उपयोगी बना सकता है। यह माना गया कि शिक्षक, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन एवं संसाधन किसी भी शिक्षा प्रणाली के प्राण है और उस प्रणाली का सीधा गुणवत्ता से सम्बन्ध है। पाठ्यक्रम का सैद्धान्तिक ज्ञान एवं व्यावहारिक ज्ञान शिक्षक को विभिन्न प्रकृति के कार्यों को संपादन करने के लिए तैयार करता है। पाठ्यक्रम वह माध्यम या साधन है, जिसकी मदद से किसी भी उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है।

1988 में विद्यालयी पाठ्यक्रम की रचना इसीलिए की गई थी कि बालक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ज्ञान अर्जित करने, अवधारणाएँ विकसित करने, समाज-संस्कृति, आर्थिक, यथार्थ मूल्यों को ग्रहण करने और अपनाने योग्य बन सके। ये मूल्य आधारित शिक्षा के पाँच प्रमुख उद्देश्यों - ज्ञान, कौशल, संतुलन, दृष्टि और अस्मिता से जुड़े सामाजिक मूल्यों को जोड़ने की अनुशंषा की गई थी। इसी को दृष्टिगत रखते हुए वर्तमान तक शिक्षा पाठ्यक्रम नई शिक्षा नीति, वर्तमान आवश्यकता को ध्यान में रखकर निर्मित किया जाता है। आज के वैज्ञानिक युग में बालक का परिवेश भी नई

तकनीक से परिचित रहता है। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक बच्चों को परिवेशगत ज्ञान के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए होना चाहिए और शिक्षक से अपेक्षा की जाती है कि वह नवाचार करते हुए बहुविद्या से सतत एवं समावेशी शिक्षा पर बल दे।

पाठ्यचर्या की अवधारणा

1988 से पूर्व शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम एवं पाठ्यचर्या की समीक्षा नहीं हुई। इसे जरूरी मानते हुए नवीं पंचवर्षीय योजना 1997-2000 के दस्तावेज पृष्ठ 123 में की गई सिफारिश के अनुसार पाठ्यक्रम में बदलाव हुआ और पाठ्यचर्या निर्माण की आवश्यकता बताई गई। यह माना गया कि एक सार्थक पाठ्यचर्या को समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए और शिक्षार्थी की आवश्यकताओं और आकाँक्षाओं की उसमें झलक मिलनी चाहिए। इस हेतु तीन आधार स्तंभ माने गये- प्रासांगिकता, समानता और उत्कृष्टता। यह स्वीकार किया गया कि पाठ्यचर्या निर्माण आवश्यक रूप से एक अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है, जिसके अन्तर्गत समाज में घटित होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से शिक्षा में गुणात्मक विकास की सतत खोज की जाती है। इस दृष्टि से यह कोई जड़ प्रक्रिया न होकर एक गतिशील आयाम है। तत्कालीन पाठ्यक्रम के बारे में कहा गया कि भारत में ऐसे कई व्यक्ति हैं जो यहाँ की प्रगति से अनभिज्ञ हैं। वे न केवल अतीत की उपलब्धियों से अनभिज्ञ हैं, अपितु स्वदेशी ज्ञान में निहित विराट शक्तियों, उसकी गहराइयों, प्रासांगिकता से भी अनभिज्ञ है। राष्ट्र की एकता को सुदृढ़ बनाने की दृष्टि से यह आवश्यक है कि सांस्कृतिक विरासत, परंपरा, देश की विभिन्न जातियों एवं क्षेत्रीय समूहों के इतिहास, उनके योगदान को सही परिपेक्ष्य में पढ़ा और समझा जाये। इस हेतु शिक्षा को प्रासंगिक और सार्थक बनाने के लिए शिक्षार्थियों को सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों से अवगत कराना होगा। स्वदेशी भारतीय पाठ्यचर्या में देश के महान विचारकों जैसे श्री अरविन्द, विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा फूले, महात्मा गाँधी, रविन्द्र नाथ ठाकुर, जाकिर हुसैन, जी. कृष्णमूर्ती, गिजु भाई बघेला के विचारों को समाहित कर उनकी शिक्षा पर चलने हेतु प्रेरित करना होगा। एस.बी. चव्हाण समिति 1999 ने सामाजिक समरसता एवं सामाजिक सद्भाव युक्त शिक्षा दिये जाने का प्रस्ताव 26 फरवरी 1998 को राज्य सभा में रखा था। प्रो. यशपाल की अध्यक्षता में गठित समिति ने 'शिक्षा-बिना बोझ के (लर्निंग विदाउट बर्डन) 2005' में पाठ्यचर्या में सुझाव दिया जिसमें पाँच नीति निदेशक सिद्धान्तों का प्रस्ताव रखा-

1. ज्ञान को स्कूल के बाहरी ज्ञान से जोड़ना, 2. पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो, 3. पाठ्यचर्या से बच्चों के चहुमुखी विकास के अवसर उपलब्ध कराये, पाठ्यपुस्तक केन्द्रीत शिक्षा न हो, 4. परीक्षा को अपेक्षाकृत अधिक लचीला बनाये तथा कक्षा गतिविधि से जोड़ी जाये तथा 5. एक ऐसी अधिभावी पहचान का विकास हो जिसमें प्रजातांत्रिक राज्य व्यवस्था के अन्तर्गत राष्ट्रीय चिंताएँ समाहित हो। ❑

(कोषाध्यक्ष, अ.भा.रा.शै.महासंघ)

हमें अपनी पुरातन श्रेष्ठता सिद्ध करनी होगी, तभी प्रत्येक भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ कह सकेगा कि हमारा विश्व को विभिन्न विषयों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमें अपने प्राचीन विपुल ज्ञान, को आधुनिकता के साँचे में ढालकर प्राचीन व अर्वाचीन शिक्षा पद्धति का मिश्रण करने का प्रयास करना होगा। हमें पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या में प्राचीन चिंतन का सांमजस्य स्थापित करना होगा क्योंकि परिस्थिति सापेक्ष परिवर्तन आज समय की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या को रोचक बनाने से रचनात्मक व सृजनात्मक सोच का विकास होगा, यही भाव देश के समग्र विकास का वाहक होगा।

पाठ्यचर्या : समग्र विकास की आधार शिला

❑ प्रो. मधुर मोहन रंगा

आजकल समाज में लाखों-करोड़ों रुपये के भारी भरकम पैकेज की नौकरियाँ अखबारों की सुर्खिया बनती है। हम भी हमारे सार्वजनिक जीवन में यह अनुभव करते हैं कि अधिकांश माता-पिता का अवकाश के समय, यही चर्चा का विषय रहता है, कि मेरा पुत्र या पुत्री विदेशी कम्पनी में या विदेश में लाखों के पैकेज पर कार्य कर रहा है। यही प्रतिष्ठा का विषय बन जाता है। जिनके बच्चे विदेश में विदेशी कम्पनियों में कार्य कर रहे हैं या विदेश में उच्च शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं वे गर्व से भरे अन्दाज में भाव भंगिमा का प्रदर्शन करते हैं। आज उच्च शिक्षा के लिए विदेशों में जाना भारतीय समाज की पहली पसंद बन गया है। जिस प्रकार कुछ समय पूर्व निजी शिक्षण संस्थाओं में उच्च शिक्षा पाना ''स्टेटस सिंबल'' माना जाने लगा था उसी प्रकार विदेशों में पढ़ाई के लिए भेजना भी इसी श्रेणी में आता है। एक अनुमान के अनुसार करीब 50,000/- करोड़ रुपये भारतीय विद्यार्थियों के अभिभावक प्रतिवर्ष विदेशों में पढ़ाई पर व्यय कर रहे हैं, जो करीब 12 लाख रुपये प्रति विद्यार्थी होता है, जबकि केन्द्र सरकार का उच्च शिक्षा पर वार्षिक बजट 26,000/- करोड़ रुपये है। यू.एस. नेशनल सांइस फाउन्डेशन के सर्वेक्षण के अनुसार विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के बाद 80 प्रतिशत भारतीय स्वदेश नहीं लौटते हैं। गत तीन वर्षों के दौरान विदेश जाने वाले लगभग 3,500 मेडिकल छात्रों में से कोई भी स्वदेश नहीं आया। इसी कारण देश में विषय विशेषज्ञों की कमी का खतरा मंडराता रहता है। वैसे भी हमारे यहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, तकनीकी, अभियांत्रिकी, वानिकी आदि विभिन्न क्षेत्रों में विषय विशेषज्ञों की भारी कमी है। तर्क यही दिया जाता है कि इस विसंगतिपूर्ण स्थिति को शीघ्र बदलना चाहिए व शिक्षा प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन व सुधार लाना चाहिये। परन्तु वर्तमान परिदृश्य का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विदेशों में जाने का मोह समाज अब तक नहीं छोड़ पाया

है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य का अध्ययन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जो शिक्षा नैतिकता, सामाजिकता, आध्यात्मिकता के विकास के साथ-साथ आर्थिक, बौद्धिक व शारीरिक उन्नयन का माध्यम रही है। कालान्तर में शिक्षा का उद्देश्य रोजगार से जुड़ गया है उस पर पाश्चात्य वैश्विक सोच, बाजार व उपभोक्तावादी संस्कृति प्रभाव के कारण यही शिक्षा की दिशा व दशा तय कर रही है।

इसी कारण इस विषय पर भी चिन्तन व मनन करना होगा कि हमारे पाठ्यक्रम, पाठ्य सामग्री, पाठ्यचर्या, आधारभूत संरचना, शिक्षकों की नियुक्ति, ससांधनों की उपलब्धता, आधुनिक अधिगम प्रणाली, तकनीकी, परिस्थिति की सापेक्ष अध्ययन आदि विषयों के सातत्य पर विचार करना होगा। क्यों आज विदेशों में पढ़ने जाने की होड़ लगी है, जबकि हमारे यहाँ से शिक्षित डॉ. हरगोविन्द खुराना ने पंजाब विश्वविद्यालय से पढ़ाई करने के बाद कोशिका विज्ञान व जीव-रसायन में शोध कार्य किया और 1968 में चिकित्सा एवं कार्यिकी में नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया। डॉ. वेकटरमण रामाकृष्ण ने एम. एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा से अध्ययन करने के पश्चात् केलिफोर्निया के सेनडियगो विश्वविद्यालय से शोध करने के पश्चात् 2009 में रसायन शास्त्र के नोबेल पुस्कार में सहभागी रहे। सुन्दर पिचाई जिन्होंने भारत में अध्ययन किया व आजकल गूगल में सी.ई.ओ. के उच्च्व पद पर स्थापित हैं और भी अनगिनत उदाहरण हैं, जिन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में अपनी श्रेष्ठता प्रतिस्थापित की है। अत: निश्चित रूप से यह तो स्पष्ट है कि हमारे पाठ्यक्रमों में पाठ्यचर्या को रोचक व तथ्यों के आधार पर प्रतिस्थापित किया गया है। तभी तो विश्व में भारतीय प्रतिभा ने श्रेष्ठ कीर्तिमान स्थापित किये। परन्तु फिर भी आज के इस वैश्वीकरण के युग में पाठ्यचर्या को आधुनिक बनाना समय की आवश्यकता है।

विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों का निर्धारण विश्वविद्यालय स्तरीय समितियों के द्वारा किया जाता है। इसके निर्धारण में देश-प्रदेश व संभाग की विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, प्राकृतिक, वैज्ञानिक, सम्भावनाओं के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत व धरोहरों का भी ध्यान रखा जाना चाहिये। तदनुसार पाठ्यचर्या के माध्यम से विद्यार्थियों के लिए देशानुकूल व समयानुकूल पाठ्य सामग्री का समावेश किया जाना चाहिये। पाठ्यक्रम में विज्ञान, कला, संगीत ज्योतिष, वाणिज्य, वानिकी, वास्तुशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, उद्योग, स्थापत्यकला आदि से संबंधित प्राचीन योगदान की जानकारी विद्यार्थियों को पाठ्यक्रमानुसार देनी चाहिए तभी पाठ्यचर्या का महत्त्व बढ़ता है। पाठ्यचर्या के द्वारा ही विद्यार्थियों को समस्त जानकारियाँ प्राप्त हो सकेंगी उसी से उनकी मन:स्थिति, भावी सकारात्मक सोच व देश के प्रति स्नेह का भाव जाग्रत हो सकेगा जिससे वह अपनी मेधा का उपयोग देश की प्रगति के लिए कर सकेंगे। पाठ्यचर्या

द्वारा ही उनमें स्वाभिमान के भाव जाग्रत होंगे। पाठ्यचर्या के द्वारा ही विषय वस्तु को रोचक बनाया जाना चाहिये ताकि विद्यार्थी जटिलतम अवधारणाओं को सरलतम तरीके से बातों ही बातों में ग्रहण कर लें। जब विद्यार्थी सटीक उदाहरणों से विज्ञान व अन्य विषयों की अवधारणाओं को ग्रहण करेगा तब स्वतः ही उसके मन-मस्तिष्क में विचारों का प्रवाह अनवरत रहेगा और यही सोच उसमें वैज्ञानिक अनुसंधान व अन्वेषण की आधार शिला रखेगी। पाठ्यक्रमानुसार, पाठ्यचर्या को रोचक बनाने से ही विद्यार्थियों की विषय में अभिरुचि बढ़ती है, उसकी स्मरण शक्ति व विचारशीलता दृढ़ होती है। उदाहरण के लिए गणित को एक शुष्क व नीरस विषय माना जाता है। परन्तु भास्कराचार्य के ग्रंथ 'लीलावती' में इस विषय को आनंद के साथ रोचक व जिज्ञासा युक्त बनाया गया है व जीवन्त उदाहरणों से गणित की आधारभूत अवधारणाओं को स्पष्ट किया गया है। बोधायन प्रमेय के संदर्भ में एक रोचक प्रश्न दिया हुआ है -

दो वानर सौ हाथ (एक हाथ=20 इंच) ऊँचे वृक्ष पर बैठे हैं। वृक्ष की जड़ से दो सौ हाथ दूरी पर एक जल स्त्रोत है, एक वानर वृक्ष से उतर कर जल स्त्रोत तक जाता है जबकि दूसरा वानर एक निश्चित ऊँचाई तक एकदम सीधे ऊपर उछल कर सीधे जल स्त्रोत तक छलांग लगाता है। यदि दोनों वानरों की तय की गई दूरी समान है तो दूसरा वानर कितना ऊपर उछला? यह प्रश्न त्रिकोणमिति से संबंधित है। भास्कराचार्य ने इस विषय के सभी सिद्धान्त 'लीलावती' में वर्णित किये हैं। हमारे यहाँ दैनिक जीवन में अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से ही बालक को विभिन्न विषयों की जानकारी प्रदान की जाती थी। जिसमें दादा-दादी, नाना-नानी की कहानियाँ सम्मिलित हैं। प्राचीन काल में गुरुकुल से शिक्षित व दीक्षित विद्यार्थी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकसित होता था, वह समस्त मानवता के कल्याण की

पाठ्यचर्या के द्वारा ही विषय वस्तु को रोचक बनाया जाना चाहिये ताकि विद्यार्थी जटिलतम अवधारणाओं को सरलतम तरीके से बातों ही बातों में ग्रहण कर लें। जब विद्यार्थी सटीक उदाहरणों से विज्ञान व अन्य विषयों की अवधारणाओं को ग्रहण करेगा तब स्वतः ही उसके मन-मस्तिष्क में विचारों का प्रवाह अनवरत रहेगा और यही सोच उसमें वैज्ञानिक अनुसंधन व अन्वेषण की आधार शिला रखेगी। पाठ्यक्रमानुसार, पाठ्यचर्या को रोचक बनाने से ही विद्यार्थियों की विषय में अभिरुचि बढ़ती है, उसकी स्मरण शक्ति व विचारशीलता दृढ़ होती है।

बात को आत्मसात कर जीवन पथ पर अग्रसर होता था। अभी हाल ही में नवम्बर 2015 के पंजाब केसरी में विनीत नारायण का लेख 'आधुनिक शिक्षा को कड़ी चुनौती' पढ़ा। जिसमें उन्होंने गुजरात के महानगर अहमदाबाद में हेमचन्द्र आचार्य संस्कृत गुरुकुल द्वारा प्रदत्त शिक्षा का वर्णन किया है, जिसका संचालन उत्तम भाई कर रहे हैं, जिनके स्वयं के पास विश्वविद्यालय की औपचारिक डिग्री नहीं है परन्तु अपने स्वाध्याय व अनुभव से अर्जित ज्ञान का सम्प्रेषण भारतीय विद्यार्थियों में कर रहे हैं। जिस गूगल बालक (5-6 वर्ष का बालक - कौटिल्य पंडित) का जिक्र सभी दूरदर्शन चेनलों ने किया, यह मेधा इसी संस्था की देन है। परन्तु किसी भी चेनल ने इस गुरुकुल का जिक्र तक नहीं किया। इस लेख में उन्होंने बताया है कि इस गुरुकुल के विद्यार्थी इतिहास व गणित के प्रश्नों के उत्तर, प्रश्न खत्म होने से पहले ही दे देते हैं। ये सभी बालक संस्कृत में वार्ता करते हैं, शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, सभी शिक्षक वैदिक पद्धति से पढ़ाते है। यहाँ बच्चों की अभिरुचि के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। यही सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न है, आज हमारे सामने। देश में उच्च शिक्षा के उन्नयन के उद्देश्य को लेकर कई आयोगों का गठन हुआ, जैसे - 1948-49, 1953, 1964-66 आदि वर्षों में 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1992 में संशोधन) में पाठ्यक्रम की रूपरेखा व उसकी प्रत्येक पाँच वर्षों में समीक्षा का प्रावधान रखा गया। संस्कृत शिक्षा को त्रिभाषा फार्मूले के अनुसार स्थापित करने का प्रयास किया गया। किन्तु प्रश्न उठता है कि उसके अनुसार हम कहाँ तक आगे बढ़े हैं? ऊपर वर्णित गुरुकुल उदाहरण भी संस्कृत की उपादेयता को प्रमाणित करता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों व पाठ्यचर्या में समयानुसार परिवर्तन किया जाय। साथ ही हम अभी भी औपनिवेशिक सोच से छुटकारा नहीं पा सके हैं, यह तभी संभव होगा जब प्रत्येक विद्यार्थी को हमारे विभिन्न विषयों के प्राचीन ज्ञान का आभास होगा। हमें अपनी पुरातन श्रेष्ठता सिद्ध करनी होगी, तभी प्रत्येक भारतीय राष्ट्रीय स्वाभिमान के साथ कह सकेगा कि हमारा विश्व को विभिन्न विषयों में महत्त्वपूर्ण योगदान है। हमें अपने प्राचीन विपुल ज्ञान, को आधुनिकता के साँचे में ढालकर प्राचीन व अर्वाचीन शिक्षा पद्धति का मिश्रण करने का प्रयास करना होगा। हमें पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या में प्राचीन चिंतन का सांमजस्य स्थापित करना होगा क्योंकि परिस्थिति सापेक्ष परिवर्तन आज समय की आवश्यकता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यचर्या को रोचक बनाने से रचनात्मक व सृजनात्मक सोच का विकास होगा, यही भाव देश के समग्र विकास का वाहक होगा। ❑

(विभागाध्यक्ष, पर्यावरण विज्ञान विभाग, सरगुजा विश्वविद्यालय, अम्बिकापुर (छत्तीसगढ़)

पाठ्यचर्या का अर्थ व्यापक है। इसमें शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु की जानी वाली सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें उसका एक भाग होती है। पाठ्यचर्या के अनुरूप व्यवस्था करने की तुलना में पाठ्यक्रम निर्धारण कर जैसे तैसे पाठ्यपुस्तकें बना देना बहुत आसान काम है। वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था पूर्णतः पाठ्यपुस्तक आधारित हो गई है। सरकार द्वारा पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन से तो इनका एकछत्र राज हो गया है। मँहगे निजी विद्यालयों तथा ग्राम के सरकारी विद्यालयों में एक जैसी पाठ्यपुस्तकें पढ़ाई जा रही है। पाठ्यपुस्तकों को भारी करना ही शिक्षा के स्तर को ऊँचा करना मान लिया गया है। सीखने में ग्रहण करने की क्षमता व व्यक्तिगत अनुभवों की बात को किनारा किया जाता है। परिणाम यह हो रहा है कि सब कुछ सिखाने के चक्कर में मूलभूत ज्ञान भी नहीं दे पा रहे हैं।

शिक्षा का डीएनए - पाठ्यचर्या

❑ **विष्णुप्रसाद चतुर्वेदी**

आज जब हम पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या विषय पर चर्चा कर रहे हैं तब समाचार पत्रों में विद्यार्थियों द्वारा आत्महत्या करने के समाचार निरन्तर प्रकाशित हो रहे हैं। इन आत्महत्याओं के पीछे बड़ा कारण भारी पाठ्यक्रम और प्रतियोगिता का दबाव ही नजर आता है। सरकार ने भी इस ओर ध्यान दिया है। शिक्षा की नींव को स्कूली शिक्षा है। प्रयास नींव को मजबूत करने के किए जा रहे हैं मगर समाचार सम्पूर्ण भवन के कमजोर होने के मिल रहे हैं। स्कूली शिक्षा का विस्तार हो रहा है, गुणवत्ता गिर रही है। प्राथमिक शिक्षा पूरी करने पर भी बच्चे ठीक से पढ़ना व अंकों का ज्ञान नहीं सीख पा रहे हैं। इसका बुरा प्रभाव उच्च शिक्षा पर दिखाई दे रहा है। हमारे अधिकांश स्नातकों को नौकरी के योग्य नहीं समझा जा रहा है।

पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम

पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के अन्तर को समझना भारत वालों के लिए कठिन नहीं होना चाहिए। इनका अन्तर उतना ही है जितना कथनी व करनी में होता है। महाभारत के एक प्रसंग द्वारा इसे आसानी से समझा जा सकता है। गुरु द्रोण ने सभी को एक पाठ दिया, सदा सत्य बोलो। युधिष्ठर के अतिरिक्त सभी शिष्यों ने पाठ जल्दी ही सुना दिया। युधिष्ठर कई दिनों तक अभी पाठ याद नहीं हुआ ही कहते रहे। कारण था कि युधिष्ठर के लिए पाठ याद होने का अर्थ सत्य बोलने का अभ्यास करना था। अन्यों के लिए पाठ का अर्थ शब्दों को रटना था। आज शिक्षा में रटना ही हो रहा है। विज्ञान में प्रयोग नहीं किए जा रहे हैं, प्रयोगों को रटा जा रहा हैं। फुटबाल कैसे खेला जाता है? यह खिलाकर नहीं सिखाया जाता। स्वास्थ्य शिक्षा की पुस्तक में पाठ लिख कर रटाया जाता है।

पाठ्यचर्या का अर्थ व्यापक है। इसमें शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु की जानी वाली सभी क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें उसका एक भाग होती है। पाठ्यचर्या के अनुरूप व्यवस्था करने की तुलना में पाठ्यक्रम निर्धारण कर जैसे तैसे पाठ्यपुस्तकें बना देना बहुत आसान काम है। वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था पूर्णतः पाठ्यपुस्तक आधारित हो गई है। सरकार द्वारा पाठ्यपुस्तकों के प्रकाशन से तो इनका एकछत्र राज हो गया है। मँहगे निजी विद्यालयों तथा ग्राम के सरकारी विद्यालयों में एक जैसी पाठ्यपुस्तकें पढ़ाई जा रही है। पाठ्यपुस्तकों को भारी करना ही शिक्षा के स्तर को ऊँचा करना मान लिया गया है। सीखने में ग्रहण करने की क्षमता व व्यक्तिगत अनुभवों की बात को किनारा किया जाता है। परिणाम यह हो रहा है कि सब कुछ सिखाने के चक्कर में मूलभूत ज्ञान भी नहीं दे पा रहे हैं।

उच्च शिक्षा के हाल और भी बुरे हैं। प्रतिस्पर्धा को प्रोत्साहित करते हुए पाठ्यक्रम को भारी भरकम कर दिया गया। रटने की भी एक सीमा होती है। अभिभावकों की अपेक्षायें पूरी नहीं कर पाने के कारण कई बच्चों में अपराध बोध पनप जाता है। कुछ कमजोर बच्चे आत्महत्या कर लेते हैं। वास्तव में ये हत्यायें है, मगर अपराधी को ढूँढ़ने व सजा देने का कोई प्रयास नहीं होता।

कहा जा सकता है कि लाखों विद्यार्थी इसी पाठ्यक्रम के आधार होने वाली परीक्षाओं में 99 प्रतिशत तक अंक लाकर उत्तीर्ण हो रहे हैं। उन लोगों कि आँखें इस समाचार से खुल जानी चाहिए कि 95 प्रतिशत अंक लाकर कॉलेजों में पढ़ रहे बच्चे एक भी वाक्य शुद्ध नहीं लिख पा रहे हैं। अधिकारी उसे शिक्षा व्यवस्था कि कमी नहीं मानकर उदार मूल्यांकन को जिम्मेदार ठहरा रहे हैं। भविष्य में कस के अंक देने की कसमें खा रहे हैं। क्या इससे समस्या का उचित हल निकल आएगा?

शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या में प्रयुक्त 'राष्ट्रीय' शब्द का अर्थ अखिल भारतीय है। इसे शिक्षा को समवर्ती सूची में सम्मिलित करने का परिणाम माना जा सकता है। प्रारम्भिक व माध्यमिक शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का प्रथम प्रकाशन 1986 में किया गया था। इसी वर्ष देश में नई शिक्षा नीति लागू की गई थी। नई शिक्षा नीति 1986 के क्रियान्वयन में ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड चला कर प्राथिमक विद्यालयों को न्यूनतम संसाधनों से सज्जित करने का प्रयास कुछ स्तर तक सफल रहा। इसके साथ ही राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण परिषद ने राज्य शैक्षिक अनुसंधान व प्रशिक्षण संस्थानों व जिला शैक्षिक प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से अपनी पहुँच जिला स्तर तक बना ली। शिक्षा क्षेत्र में विश्व स्तर के सुधार प्रयासों ने भी भारत की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित किया। केन्द्र में पहली बार बनी गैर कांग्रेसी सरकार ने 1986 की स्कूली शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के स्थान पर रूपरेखा 2000 प्रकाशित की। इसके अनुसार नया पाठ्यक्रम रचा गया तथा नई पुस्तकें लिखी गईं।

सन् 2000 की रूपरेखा में 1986 की रूपरेखा के कई बिंदुओं, जैसे न्यूनतम अधिगम की अवधारणा, को यथावत रखते हुए कुछ नए विचार जोड़े गए। उसी समय वैश्वीकरण की गूंज भी सुनाई देने लगी थी। देश की शिक्षा व्यवस्था को बनाए रखते हुए वैश्वीकरण को समाहित करने का प्रयास किया गया। समाज में प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए विज्ञान-प्रौद्योगिकी विषय पढ़ाया जाने लगा। एक नया प्रयास मूल्यों की शिक्षा के साथ विद्यार्थियों को सभी धर्मों की मूल शिक्षा से परिचित कराने का प्रयास भी किया गया। सरकार का कहना था इससे बच्चे यह जानेंगे कि सभी धर्म मूलत: मानव विकास की बात करते हैं। प्रत्येक धर्म में पर्यावरण संरक्षण की बात कही गई है, अत: पर्यावरण शिक्षा को बल मिलेगा। मगर राजनीतिक मुद्दा बना कर इसका विरोध किया गया।

शिक्षा का डीएनए

केन्द्र में सरकार बदलने के साथ ही स्कूली शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 प्रकाशित की गई। विज्ञान-प्रौद्योगिकी को पुन: विज्ञान विषय मे रूप में पढ़ाने, सभी धर्मों की मूल शिक्षा के स्थान पर शान्ति के लिए शिक्षा दी जाने लगी। न्यूनतम अधिगम की अवधारणा को बिना कोई कारण बताए छोड़ दिया गया। पुन: पाठ्यक्रम रचा गया तथा नई पुस्तकें लिखी गईं। भारत के बच्चों के लिए अंग्रेजी में पुस्तकें लिख कर भारतीय भाषाओं में भद्दा सा अनुवाद किया गया।

इन परिवर्तनों को विद्यार्थियों के हित से देखें तो कोई सुधार नहीं हुआ। राजनैतिक उठापटक ही अधिक हुई। अधिक हल्ला इतिहास व सामाजिक अध्ययन के आसपास ही होता रहा है। इससे केन्द्र व राज्यों के बीच टकराहट भी हुई। पाठ्यचर्या की बातें हकीकत में नहीं बदल सकी। पाठ्यचर्या को शिक्षा का डीएनए माने तो पाठ्यचर्या शैक्षिक अनुभवों में बदलना डीएनए से प्रोटीन बनने जैसा है। एक गलती भी उपयोगी प्रोटीन को विष में बदल देती है। प्रकृति भी अपनी गलतियाँ सुधार लेती है मगर हम अभी ऐसा नहीं कर पा रहे हैं।

पाठ्यचर्या के केन्द्रीकरण से निचले स्तर पर नई पहल लगभग समाप्त हो गई है। केन्द्र के अधिक संसाधन है वह अपनी पाठ्यचर्या को लागू कर सकता है मगर राज्य मात्र केन्द्र का पाठ्यक्रम में कुछ हेरफेर कर पुस्तकें तैयार कर लेते हैं। अपनी अलग से पाठ्यचर्या बनाने की प्रवृति सामान्यत: नहीं है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का कोई सकारात्मक प्रभाव भले ही नहीं हुआ हो मगर केन्द्र द्वारा अधिक अंक देने की प्रवृति को सभी राज्यों ने अपना लिया। हल्दी लगी न फिटकरी रंग चोखा आने लगा है। स्तर गिर रहा है मगर बोर्ड परीक्षा के परिणाम अच्छे आने लगे हैं।

विश्व की तुलना में हमारी शिक्षा का स्तर कहा पहुँच गया इसका अहसास हम पीसा टेस्ट में सबसे पीछे रहकर कर चुके हैं। देश की शिक्षा में सचमुच सुधार करना है तो राजनीति से हट कर जबावदेह व्यवस्था करनी होगी। सरकारों के साथ बदलने वाली पाठ्यचर्याओं से बचना होगा। पाठ्यचर्या को अखिल भारतीय के साथ राष्ट्रीय हित वाली बनाना होगा। राष्ट्रहित में ही समग्र कल्याण निहित है। ❑

(बाल एवं विज्ञान विषयक लेखक)

ऊँची उड़ान के लिए तैयार है भारतीय शिक्षा

❑ बजरंगी सिंह

चरित्र निर्माण और बुनियादी सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का काम भी शिक्षा का है तो उन्हें हमारी प्रस्तावित नई शिक्षा में जगह मिलनी ही चाहिए। तब तक कोई सार्थक परिवर्तन नहीं हो सकता जब तक शिक्षक उसके लिए तैयार न हों। इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में अध्यापकों की प्रमुख भूमिका को स्वीकार करना होगा। शिक्षा पर लगातार राजनीतिज्ञ और उच्चाधिकारी हावी रहे हैं। इससे अध्यापकों में निराशा और निष्क्रियता बढ़ी है और माता-पिता तथा छात्रों की उपेक्षा हुई है। शिक्षा के क्षेत्र के राजनीतिज्ञों की शक्ति और अधिकारियों का दम घोटू प्रभाव बढ़ने से छात्रों-अध्यापकों की उपेक्षा हुई है। हमें इस प्रवृति को शिक्षा में सार्थक और सकारात्मक बदलाव लाने के लिए बदलना ही होगा।

आज के इस वैश्विक युग में जब हम चन्द्रलोकऔर मंगल ग्रह पर पहुँच रहे हैं। ऐसे में परम्परागत शिक्षा प्रणाली के सहारे हम शिक्षा-क्षेत्र में कभी भी ऊँची उड़ान नहीं भर सकते हैं। उसके लिए हमें उसका दायरा बढ़ाना होगा यानी स्कूल, कॉलेज और विश्वविद्यालयों के परिसर को नूतन और वैश्विक जरूरतों के अनुसार बदलना पड़ेगा। यह कार्य आसान नहीं है। इसकी सफलता के लिए हमें अपनी नीति और व्यवहार दोनों में परिवर्तन करना पड़ेगा। क्या हम आज इसके लिए तैयार हैं। शायद नहीं है। जो शिक्षा आजादी के बाद प्रथम पायदान पर होनी चाहिए थी। वह उपेक्षित रही है। उसी का परिणाम रहा है कि दर्जनों आयोग गठित हुए, समितियाँ बनी और देश ने अब तक तीन बार नई शिक्षा नीति का प्रारूप तैयार किया। हम अब चौथी नई शिक्षा नीति बनाने में जुटे हैं। उसके बाद यदि हम थोड़ा पीछे मुड़कर देखें तो पता चलता है कि इन आयोगों तथा समितियों की रिपोर्ट पर उस तरह से गौर नहीं किया गया जिसकी अपेक्षा थी। आज परिणाम हमारे सामने हैं। हमारे देश में शिक्षा का विस्तार बहुत हद तक संतोषजनक रहा है किन्तु शिक्षा की गुणवत्ता को हम आज तक स्थापित नहीं कर पाए। क्यों इसका जवाब सरकारों को ही ढूँढ़ना होगा। शिक्षा के विस्तार में निजी क्षेत्र की भूमिका निश्चय ही महत्त्वपूर्ण रही है।

एक बार पुन: देश में शिक्षाविदों, शिक्षकों तथा समाज के प्रबुद्ध वर्गों के मध्य नई शिक्षा नीति पर बहस शुरू है। देखना है कि हमारे देश की बूढ़ी शिक्षा कितनी और नई अपेक्षाओं के अनुरूप बन पाती हैं। यह सरकार के लिए वाकई एक कठिन चुनौती है। अभी तो इस पर चर्चा हो रही है कि देश की शिक्षा नीति कैसी हो। उसमें किस तरह के बदलाव किए जायें। इसलिए उसमें लोगों के सुझावों का काफी महत्त्व है। लेकिन मैं अपने अनुभवों के आधार पर यह डंके की चोट पर कह सकता हूँ कि आम प्रबुद्ध वर्गों तथा शिक्षकों आदि के सुझावों पर कभी गौर नहीं किया गया। कुछ मुट्ठी भर कथित बुद्धिजीवियों एवं कुछ आइएएस अफसरों के कॉकस की ही चली है। इन्हीं के इशारे पर हम नई शिक्षा नीति के नाम पर एक खिलवाड़ हर बार देश के युवाओं के साथ करते आ रहे हैं। परिणाम रहा कि जिस देश में 50 प्रतिशत युवा शक्ति मौजूद है, वह रोजगार और शिक्षा दोनों से वंचित रही। उसी का परिणाम रहा कि भारत विकास में पीछे बना रहा। यही नहीं शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टाचार और अराजकता का बोलबाला हो गया। शिक्षकों के चयन में भी भ्रष्टाचार और अनियमितता व्याप्त है। उसके परिणामस्वरूप अच्छे और योग्य शिक्षक नहीं आ सके । उत्तर प्रदेश जैस बड़े राज्य के शिक्षकों के चयन के लिए बने चयन बोर्ड तथा लोक सेवा आयोग के क्रियाकलाप में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं अनियमितता को रोकने के लिए हाई कोर्ट को हस्तक्षेप करना पड़ा है। प्राथमिक स्कूलों में 72825 शिक्षकों की भर्ती तीन वर्ष से अधिक समय गुजर जाने के बाद भी पूरी नहीं हो सकी। हाई कोर्ट के इस कठोर टिप्पणी के बाद भी कि स्कूलों में शिक्षा मित्र तथा पैरा टीचर शिक्षा के लिए कलंक है। फिर तमाम राज्यों में ऐसे शिक्षकों की नियुक्तियाँ जारी है। आखिर इसे कौन रोकेगा? ये ऐसे कई अनुत्तरित प्रश्न है जिनके जवाब सरकार को नई शिक्षा नीति में ढूँढना होगा।

सन् 1986 में एक नई शिक्षा नीति लाई गई। उसके बाद 1992 में उसे संशोधित किया गया क्योंकि केन्द्र में दूसरी सरकार आ गई। आखिर इस तरह का खेल शिक्षा के साथ हम कब तक करते रहेंगे। उसके बाद लगभग दो दशकों के दौरान अनेक प्रकार के बदलाव और नीतिगत परिवर्तन हुए और होते जा रहे हैं। फिर भी हम देश को आज तक ऐसी शिक्षा नीति और व्यवस्था नहीं दे सके जो युवकों को आत्मनिर्भर और आत्मगौरव वाली बना सकती। यह चुनौती भी वर्तमान सरकार के लिए है कि जब भारत 'ज्ञान का सुपर पावर' बनने की तैयारी में है तो यह देखना होगा कि यह कैसी नई शिक्षा नीति लाते हैं। जो देश के युवाओं के विकास और उन्नति के लिए कारगर साबित हो। मेरी दृष्टि में ऐसी शिक्षा नीति की देश को जरूरत है जो भारत के ज्ञान को सुपर पावर बनाने तथा बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं के अनुरूप हो। यही नहीं ऐसी शिक्षा नीति जो गुणवत्तापरक, इनोवेटिव

एवं शोध परक भी हो। जिससे वर्तमान में विज्ञान, तकनीक, अकादमिक और उद्योगों में कुशल एवं शिक्षित 'मैन पावर' की कमी दूर हो सके। यह अच्छी पहल है कि भारत सरकार ने जनमानस के साथ विचार-विमर्श का दरवाजा खोल रखा है। अब तक 2.75 लाख लोगों से ऑनलाइन सुझाव प्राप्त कर चुके हैं। मोदी सरकार ज्ञान-कौशल के साथ छात्रों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी से लैस करना चाहती है। उसके साथ ही मानव शक्ति को उद्योगों तथा शिक्षा से जोड़ने की दिशा में चिन्तन-मनन शुरू कर दिया है।

देश को इस समय योग्य एवं कर्मठ शिक्षकों की जरूरत है जो अपने ज्ञान का छात्रों के साथ आसानी से बाँट सके और छात्रों की ज्ञान पिपासा को भी शान्त कर सके । यह तभी संभव है जब शिक्षकों की भर्ती में पारदर्शिता और ईमानदारी के साथ भ्रष्टाचार मुक्त चयन की व्यवस्था हो। शिक्षकों के लिए अति आधुनिक प्रशिक्षण संस्थानों की राज्यों में स्थापना की जाये। उन्हें बराबर अपडेट करने का अवसर मिले। शिक्षकों की भर्ती में यह भी ध्यान रखना होगा कि उन्हीं लोगों को शिक्षक बनने का मौका दिया जाय जिनका शिक्षण कार्य में रुझान हो न कि हारे-थके और सभी तरफ से असफल लोगों को मजबूरी में शिक्षक बनाया जाय। जब तक सरकारें इस दिशा में ठोस कदम नहीं उठाती है, तब तक शिक्षा उपयोगी नहीं बन पायेगी। मेरा मानना है कि शिक्षक प्रशिक्षण के लिए भी पाठ्यक्रम में बदलाव जरूरी है। प्रशिक्षण महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में शिक्षकों की भर्ती ऐसे लोगों की जाये जो एमएड के साथ कम से कम 5 वर्ष का स्नातक श्रेणी के छात्रों को पढ़ाने का अनुभव रखते हों और इसे अनिवार्य किया जाय क्योंकि आज तमाम प्रशिक्षण ऐसे संस्थान खुल गए हैं, जहाँ अन्य लोगों की नियुक्ति कर प्रशिक्षण दिया जा रहा है। जब तक निर्धारित मानक ये संस्थान पूरा न कर ले। इन्हें कक्षाएँ चलाने की मान्यता और अनुमति न दी जाये।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सुधार के लिए ईमानदार और साहसिक प्रयासों की जरूरत है। आंशिक या ऊपरी तौर पर बदलाव के नाम पर बदलाव से अब काम चलने वाला नहीं है। प्राथमिक स्कूलों के परिसर को हमें आकर्षक बनाने के साथ ही सुविधाओं से लैस करना होगा। जो योजनाएँ पहले से चल रही है, उनमें अपेक्षित और ईमानदार प्रयास करने की जरूरत है। स्कूलों में छात्र और शिक्षकों का अनुपात दुरुस्त करने का समय आ गया है। हर स्तर पर शिक्षा का माध्यम हिन्दी (मातृ भाषा) तथा क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए।

कोठारी आयोग के 'सामान्य स्कूल' योजना को मजबूती मिलनी चाहिए। पिछली सरकार ने इसका पूरी तौर पर उल्टा कर दिया और जिलों में 'सामान्य स्कूल' की जगह मॉडल स्कूल की योजना को आगे बढ़ाया। उसने भी बीच में ही अपना दम तोड़ दिया। क्योंकि इन स्कूलों में प्रतिभावान को ही लिया जा रहा है। बल्कि एक नयी तमगेदार स्कूलों की नई पौध विकसित की गई। परिणाम यह रहा कि सामान्य व्यक्ति की शिक्षा ने बीच में ही दम तोड़ दिया। बल्कि यूं कहा जाय कि मॉडल स्कूल गाँव और शहर के धनी लोगों की ही जरूरत पूरी कर रहे हैं। दूसरी ओर 20 गुने से अधिक प्रतिभावान विद्यार्थी सामान्य स्कूलों में ही रहने को मजबूर हैं।

अगर हम देश को इस वैश्विक युग में सम्मानपूर्ण स्थान दिलाना चाहते हैं तो हमें शिक्षा को उपेक्षित और निचला स्थान नहीं अपितु एक महत्त्वपूर्ण और केन्द्रीय स्थान देना होगा। हमने प्रथम पंचवर्षीय योजना में 7.5 प्रतिशत शिक्षा पर कुल खर्च की सिफारिश की थी किन्तु उसे हम आगे नहीं बढ़ा सके। इस सोच से बाहर आना पड़ेगा तभी शिक्षा को पहला पायदान मिल सकेगा। एक और महत्त्वपूर्ण बात जिस पर पूरा ध्यान नहीं दिया गया है। वह है बुनियादी मूल्य, चरित्र निर्माण और नैतिक शिक्षा। इस पर हमें गौर करना होगा। अगर नैतिक मूल्य खत्म हो जायेंगे तो लोकतंत्र और धर्मनिरपेक्षता का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा। अगर चरित्र निर्माण और बुनियादी सामाजिक, सांस्कृतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का काम भी शिक्षा का है तो उन्हें हमारी प्रस्तावित नई शिक्षा में जगह मिलनी ही चाहिए। तब तक कोई सार्थक परिवर्तन नहीं हो सकता जब तक शिक्षक उसके लिए तैयार न हों। इसलिए शिक्षा की प्रक्रिया में अध्यापकों की प्रमुख भूमिका को स्वीकार करना होगा। शिक्षा पर लगातार राजनीतिज्ञ और उच्चधिकारी हावी रहे हैं। इससे अध्यापकों में निराशा और निष्क्रियता बढ़ी है और माता-पिता तथा छात्रों की उपेक्षा हुई है। शिक्षा के क्षेत्र के राजनीतिज्ञों की शक्ति और अधिकारियों का दम घोटू प्रभाव बढ़ने से छात्रों-अध्यापकों की उपेक्षा हुई है। हमें इस प्रवृति को शिक्षा में सार्थक और सकारात्मक बदलाव लाने के लिए बदलना ही होगा। ❑

(स्वतंत्र लेखक)

Syllabus and Curriculum

❑ Prof.A. K. Gupta

One important aspect which remains out of focus is concern for the nation by an individual by any means, is feeling of Nationhood and its well being. One should improve himself or herself to the benefit of the family in turn to the society, finally leading to the benefit of the nation. That is where one needs to think about many other aspects which may not be part of formal education i.e. to be more concerned about others. To develop habit of helping out others thus contributing to overall development of the society in turn to the benefit of the nation.

The education can be divided into two categories i.e. formal and informal. We are more concerned about formal education and work for it. Preparation of teaching & examination scheme and syllabus is focused for the formal education. The level of education i.e. low or high is looked accordingly e.g. stress on language or mathematics in initial education is more talked about whereas other subjects for exposure to the outer world is stressed at higher level education. Teaching scheme is prepared to justify weightage of a particular subject or topic i.e. how more time is expected to be given for a topic and marks devoted for a topic is thus decided. Curriculum focuses more on other aspects which include many other aspects of personality. Personality does not merely remain limited to formal education but it has many variants to define.

Nature of education depends upon its type, which can be any of the followings:- General, Specific, Formal, Informal, Direct, Indirect, Individual, Collective, Conscious or unconscious education. General education talks about bare minimum education which is considered essential at the early stage namely childhood to work upon it is basic requirement to face a typical situation. In an ideal state it should be free and available to all. Specific education is designed for later stage and meant for specific purposes may it be for specific job or otherwise. Modern time belongs to specialization so it is preferred one by a common person. At this level one talks about vocationaligation. A person is prepared for a specific job One may be trained for specific purpose may it be for agricultural or engineering or medical or a typical one. If a person has specific qualities to excel in a particular

Nature of education depends upon its type, which can be any of the followings:- General, Specific, Formal, Informal, Direct, Indirect, Individual, Collective, Conscious or unconscious education. General education talks about bare minimum education which is considered essential at the early stage namely childhood to work upon it is basic requirement to face a typical situation. In an ideal state it should be free and available to all. Specific education is designed for later stage and meant for specific purposes may it be for specific job or otherwise. Modern time belongs to specialization so it is preferred one by a common person.

field then it is preferred. Thus a person can serve society or the nation better.

Formal education is one branch which is established by law for specific purposes. One is kept free to choose but once the option is exercised then it is in a fixed setup to be followed for a typical objective and to be achieved in fixed time frame passing through various phases. The approach remains scientific to obtain some meaningful objectives. Thus at a time many persons can be trained for a specific purpose. At the same time it leaves many other important aspects of a personality untouched. A person can remain useful for specific job only and his input cannot be used elsewhere. Informal education is one branch of study which may be considered supplementary to the previous one. This is not established by law so to say. Naturally it does not have a formal syllabus to follow. The informal education otherwise is very innovative and can lead to inculcate personal qualities of a person. This type of education can be related more to experience.

Collective education is considered to be part of formal education where a group is taught simultaneously. However ratio of teacher to taught should be kept within a certain limit. This can provide direct contact of teacher and taught. This system saves time and money. Individual education is opposed to collective or group education. Here more time is devoted by a teacher to a student or scholar. This type of system can be more fruitful for research studies. However this cannot be followed at large scale. Management becomes difficult for this type of education. For this obvious

reason even after knowing its advantages Collective education system is preferred.

Conscious education is preferred by parents and children as they are more focused about the ultimate goal i.e. job. Unconscious education is that part which is learnt without any formal effort. This type of education one learns from surrounding environment in general. It may be considered beneficial for the good of the society.

One important aspect which remains out of focus is concern for the nation by an individual by any means, is feeling of Nationhood and its well being. One should improve himself or herself to the benefit of the family in turn to the society, finally leading to the benefit of the nation. That is where one needs to think about many other aspects which may not be part of formal education i.e. to be more concerned about others. To develop habit of helping out others thus contributing to overall development of the society in turn to the benefit of the nation.

Objective of education does not remain merely for the benefit of oneself or the family but to the benefit of the society and nation at large. This type of emotional reflection is generally seen in the situation of Natural disasters, National emergency. Blood donation camp or donation in case of an emergency e.g. war may set such an example. Traffic management in case of jam during peak hours becomes a real threat to think about. National resources can be saved to a greater extent. Saving a life during a real scenario of natural disaster or calamity should be more appreciable then obtaining a formal higher education degree.

Energy conservation and pollution control are some of the relevant topics which are talked about. Saving certain amount of energy may be considered as more energy produced. Thus various considerations becomes important. Harnessing benefits of natural lights and ventilation as well by suitable means with minimum efforts is of applied importance. Similar is the concern for pollution control which can be avoided by many suitable means e.g. To optimize production process to leave less carbon foot prints. Use of such construction materials which results in far more efficient system to follow. Similarly managing disposal of solid waste is another point where one can pay more attention. Use of bare minimum water is another factor where one can contribute. Thus small contributions if added together can yield a larger chunk to yield a sizable amount.

Sustainable consumption should be our focus for our future generations. A resource if used optimally can be appreciable if it provides a saving and use for our generation to come. Thus our objective should be to follow Vasudhev Kutumbakam, thus treating entire earth and its habitats as one family so that all these problems can be dealt with simultaneously. One has to find different cultural approaches in our country as well as one approach to inculcate feeling of oneness for the nationhood. One should focus on changes with time by considering technological advancements. Our relational position in the whole world. Change of a Government system should not reflect in our approach towards education system. More responsibility lies on the team which is responsible for formulation of Syllabus. Attempts should be made so as to consider as many aspects as is possible to move with Undergoing Completion of formal syllabus with development of a personality.

More importance on formal education shows our attention is for obtaining physical objectives than developing personal or spiritual qualities which are considered more useful for building a nation. Parivar probodhan at early stages may be useful to develop such qualities. Social Equality or Samajik Samarasta is another issue which needs to be addressed properly. Government Schools are useful in this direction where students do not find differentiation. Cultural changes are making gaps wider on many grounds. Financial aspect is considered as just one among many to name a few. Corruption is a major social menace. This can be dealt with effectively if informal education gets more focus. Turning our focus more towards physical gains rather than social aspects which may also be considered spiritual should be our main target to achieve. As said by Eminent Educationist Nation building depends up on Character building. Attempts made by our predecessor e.g. Bankim Chandra in Formulization of Vandematram in generating brotherly feeling on emotional ground or others in various aspects e.g. Dr Sampurnanad or Dr Radha krishanan, Deen Dayal Upadhyay are some examples to follow.❑

(Professor, Structural Engineering Department, JNV University, Jodhpur)

Presently, education all over the world is Eurocentric. Every one follows the European pattern and structure of education and most people also copy the contents. Officially the freedom of Bharat came in 1947, but in reality, freedom for education in Bharat had never happened. There were efforts from many nationalists to make an Indo centric education, but they were mostly either ridiculed or suppressed. 'Progressive' people wanted to be in step with whatever is going on in the rest of the world, thereby remaining just copy cats.

Education in Free Bharat

❑ **Dr. TS Girishkumar**

Our nation Bharat had to put up with all kinds of hardships for centuries, before and after the celebrated independence of 1947. There used to be invasions and infiltrations, there were deliberate as well as inadvertent efforts to belittle, estrange, insult and even eliminate our identity, there were rules from aliens, variety of aliens for a long time, perhaps from the time of Alexander's invasion to Bharat. This alien domination became complete with the fall of Prithviraj Chauhan of Delhi, and remained for more than a thousand years in modern Bharat.

Ancient Bharat

It is difficult to date the antiquity of Bharatiya Sanskriti. But we can make rough and sketchy estimates, some logic and some more common sense. The Rig Veda is undoubtedly the first ever text by mankind. And this text must have been not just composed in any manner known to us, given compilation of a book is done, in our knowledge limits today. This must have got shaped in written form on a much later time from its traces of origin; most likely a very long time later.

For, written documents were not needed to the ancestors, they had already perfected and long put into practice the tradition of Sruti and Smriti and remained comfortable with these two methods of keeping record. In all likelihood, there were much less loss of energy in preserving knowledge in this tradition of our ancestors as compared to the modern written form of texts. Texts tend to elaborate, aiming at comprehension of many, and in this process of examples and elaboration, focal energy gets dispersed, diverted and often goes offtrack both with the narrator and the listener. Sruti and Smriti tradition makes knowledge crisp; compressed and allow interpretation with established scholars and make it into what may be called a

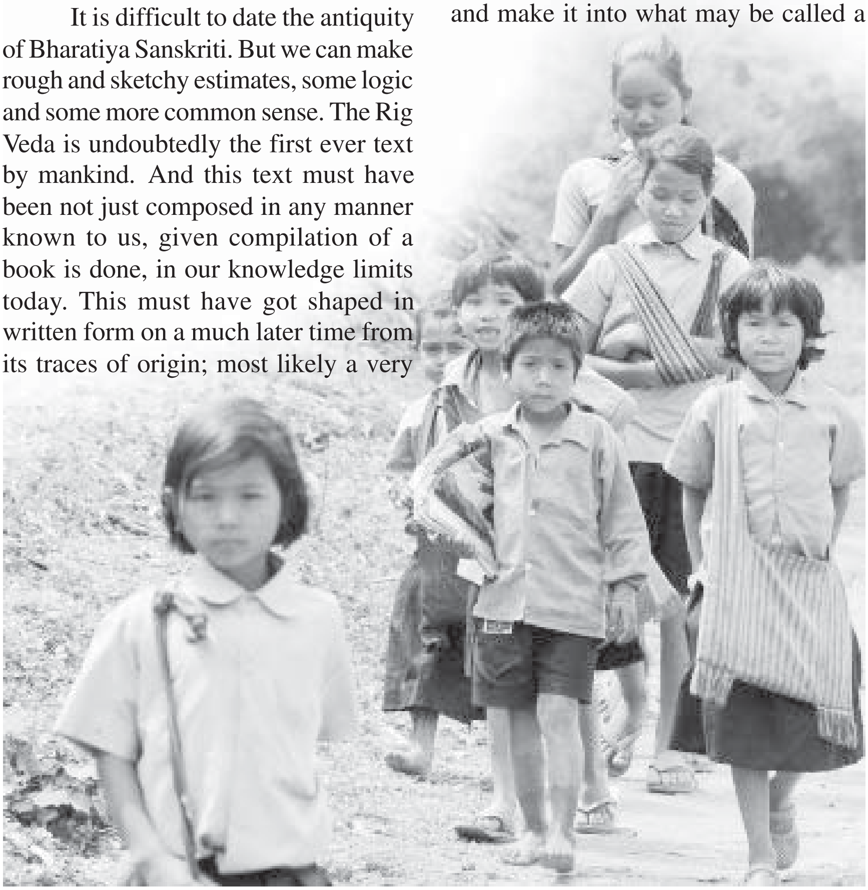

'mantra'. They repeat verses several times until remembered beyond doubt; and reproduced exactly as they were even through many generations.

In all likelihood, Yoga predated this exercise. Yoga must have been their first lesson, to initiate a student into practicing the methodology of trans-sensory abilities into acquiring knowledge. Instruments invented by modern empirical sciences are equipment meant to increase the abilities of sense organs. It had been only after this, that empirical sciences made empirical knowledge a possibility. But the Yogic methodology known as 'Yogaj' does not need the employments of sense organs at all, which is mediate knowledge; they employ this yogic method of immediate knowledge, or knowing directly. In one word, the ancestors first train the minds to acquire knowledge, and then only knowledge used to be imparted to students through Sruti and Smriti. This made them very perfect in their knowledge tradition.

Written documents

It must have been much later in time that someone or some group of scholars, through leisurely time, took to composing already existing knowledge in written forms. There is no way to know the time when this took place, and it is only wise not to try to fix any time. Recently I came across a video clip from the History channel, diving deep sea into the remains of Dwaraka. One suggestion from them is that, this city must be some thirty to forty thousand years old. If this is the case, then what could be the time of Mahabharata? And if Mahabharata is that antique, then the Rig Veda? Let us stop short at saying that we do not know.

The language Sanskrit also was not born over a day. Perhaps Sanskrit is the only artificially created language in the history of mankind. The ancestors felt the need of a complete language that can carry knowledge, and they synthesised a new language and called it the 'refined' one, naming it 'Sanskrit'. I am sure that the name itself is very suggestive. Most likely no one must have used the language of Sanskrit as their mother tongue, though they used it more than their mother tongue, it remained the language of knowledge and language of scholarship for entire Bharatvarsha. Language for a really very vast area.

To come to the point, mention of the river Saraswati in Rig Veda clearly suggest that the origin of Vedas must be in the Saraswati Valley. The Vedic sites we see at Dholavira Kalibagan etc. are settlements those came later and that also through in different stages. But then, they are the Vedic Sites where the Vedic people, our ancestors really lived. Hence one may suggest that the origin of this knowledge must have been from Saraswati valley, and the time of river Saraswati could be the time of Vedic settlements and civilisation, and of course, knowledge tradition.

Education

For Bharatiyas, all noble efforts have only one desideratum, Moksha. Whatever one does must be eventually taking him to the status of a Mumukta. Education is also no exception, and hence, "Sa Vidya Ya Vimuktaye". Needless to say that, this makes education also a most holy and pious affair. Ancestors say that knowledge must be distributed to 'deserving minds'. Knowledge kept undistributed amounts to pap: or crime. The vidwan who does not distribute knowledge to right minds is at fault and guilty.

Bharat had many 'Gurukulas' or Universities from time immemorial. Our knowledge of Bharatiya Gurukulas is actually limited to the Universities of Bharat from Takshasila and then to the Buddhistic ones subsequently, for, the Buddhist Shramanas did a great job in expanding Vedopanishadic knowledge tradition to common people and researching further. But there were also many lesser known Universities those were also great centres of learning and people from all over the world used to reach there for learning and at times even teaching. Our ancestors did distrib-

ute our knowledge to whoever came looking for knowledge, no matter from where. At the same time we also welcomed knowledge from anywhere, no matter by whom. Rig Veda teaches us, "Ano Bhadra Kritavo Yantu Viswatha".

Our ancestors had a distinct methodology of acquiring knowledge, a distinct methodology in preserving knowledge and a distinct manner of distributing them. And what is more, most of (presumably) the knowledge from our ancestors is still available in textual form.

Education in Bharat

Presently, education all over the world is Eurocentric. Every one follows the European pattern and structure of education and most people also copy the contents. Officially the freedom of Bharat came in 1947, but in reality, freedom for education in Bharat had never happened. There were efforts from many nationalists to make an Indo centric education, but they were mostly either ridiculed or suppressed. 'Progressive' people wanted to be in step with whatever is going on in the rest of the world, thereby remaining just copy cats.

For free Bharat, we have to highlight Bharatiya education. Bharat has her own distinct value system based on the Vedopanishadic knowledge tradition thus making it a uniform one, Bharat has her own epistemology based on the Vedopanishadic knowledge tradition which has this uniqueness of co-existence of the multiple, Bharat has her own metaphysics where neither a god concept nor the concept of an intermediator priest has any role, Bharat has her own theories in science and mathematics which need to be studied using Bharatiya tools to interpret and so on.

I am not asking for a going back in time: I am only demanding that we should also know these things instead of simply copying Europe. We should know what we are: we should teach our children who their ancestors were. The greatest thing that a Bharatiya can possess is not his Sanskriti, but a Sanskriti arising from Swabhimana, and a Swabhimana arising from the knowledge of what one is and what ancestry one belongs to. This only can make Swabhimana formidable, and Sanskriti impeccable. With such knowledge, the Nation of Bharat can be strong and shall naturally be "Viswa Guru". There is no exaggeration here, Bharat indeed is Viswa Guru, and people do know this; the only thing is that, not so many people are commonly aware of this.

Future Plans

The world today has two distinct knowledge traditions. One is Bharatiya, and the other is European (I put all others into this category, since European knowledge tradition is a synthesis from all over including Bharat). Bharatiya knowledge tradition has established knowledge system in all area, and texts are available to this.

On a normal course, we are in the European structure of education, and it shall remain so for a real long time. Let us also go with what happens elsewhere, but at the same time, let us keep knowing our fundamentals and keep realising that what is given to us from Europe is a mere corollary. Let us first understand their knowledge systems; but let us also understand our knowledge systems. Each student in Bharat must be capable of standing firmly on his ancestry and challengingly looking at what Europe teaches. Where possible, our knowledge must be pushed as a contribution from ancient Bharat. Such should be real education in free Bharat, without which, Bharat cannot be thought of as free.

The greatest aspect in Bharatiya knowledge tradition is her epistemology of co-existence. Co-existence here is not just surface-level co-existence of man and man: it is real co-existence of man with the entire cosmos; animate and inanimate. The Upanishadic 'Kosha Theory speak of Annamaya, Pranamaya, Manomaya, Vijnanamaya and Anandamaya Koshas', where the entire cosmos is accounted for. The immediate difficulty with European epistemology is that they read too much of specificities these days: thereby drawing distinctions and differences and focusing as well as narrowing down to particulars. This creates their epistemology of difference and the relations between particular to particular becomes one that of contradiction and conflict, which Marx Karl had effectively brought out into a theory. As a result, right from personal level of family to national level of interaction, they fail to co-exist by and large.

It should be possible for us to design curriculum and syllabus in this direction. This may take a long time and this may a very laborious task, but somewhere we have to start and begin working. I know that many of us are doing these things in our own very personal level, and this also shall go on, but there shall not be any visible results in the near future. Let the education experts of my nation begin, begin working in this real Rashtravadi education structure to make Bharat free. ❑

(Professor of Philosophy,
M.S. University, Baroda)

शिक्षित भारत का सपना

❑ रवि शंकर

शिक्षा-व्यवस्था की एक बुनियादी समस्या इसमें निहित विषमता भी है। दो तरह की शिक्षा प्रणाली चल रही है- एक उनके लिए जो इसे खरीद सकते हैं, और दूसरी उनके लिए, जो सरकारी स्कूल न हों तो निरक्षर रह जाने के लिए अभिशप्त होंगे। यह स्थिति सबसे ज्यादा प्राथमिक शिक्षा में है। कोठारी आयोग समेत शिक्षा पर बनी सभी प्रमुख समितियों ने समान शिक्षा प्रणाली की वकालत की थी। आज देश में समान शिक्षा प्रणाली के लिए कहीं से कोई सशक्त आवाज नहीं उठ रही है। उलटे शिक्षा में बाजार का दखल और बढ़ता जा रहा है। ऐसे में शिक्षा की भावी तस्वीर कैसी होगी इसका अंदाजा लगाया जा सकता है।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि शिक्षा एक ऐसा साधन है जो राष्ट्र की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाने में एक जीवंत भूमिका निभा सकता है। यह नागरिकों की विश्लेषण क्षमता के साथ-साथ उनका सशक्तीकरण करता है, उनके आत्म-विश्वास का स्तर बेहतर बनाता है और उन्हें शक्ति से परिपूर्ण करता है, दक्षता बढ़ाने के लक्ष्य तय करता है।

शिक्षा में केवल पाठ्यपुस्तकें ही शामिल नहीं है बल्कि इसमें मूल्यों, कौशलों तथा क्षमताओं में भी वृद्धि की विधि और अपेक्षा शामिल है। इससे व्यक्ति को अपने कॅरियर और साथ ही प्रगतिशील मूल्यों के साथ नए समाज के निर्माण में एक उपयोगी भूमिका निभाने में सहायता मिलती है। अत: शिक्षा व्यक्तिगत स्तर की बेहतरी के साथ-साथ पूरे समाज में बदलाव ला सकती है। इतना ही नहीं, साक्षर होने का मतलब लोगों को शिक्षित करना मात्र नहीं है। बल्कि इसके कई फायदे हैं। बेहतर साक्षरता दर से जनसंख्या बढ़ोतरी, गरीबी और लिंगभेद जैसी समस्याओं से निपटा जा सकता है।

बहरहाल, संयुक्त राष्ट्र के अध्ययन के मुताबिक दुनिया भर में करीब चार अरब लोग साक्षर हैं तो वहीं दूसरी तरफ अब भी करीब 77.5 करोड़ लोग साक्षर नहीं हैं। इनमें से दो-तिहाई महिलायें हैं। लगभग तीन चौथाई निरक्षर आबादी दुनिया के सिर्फ दस देशों में रहती है। हर पाँच में से एक व्यक्ति निरक्षर है। वहीं दुनिया के लगभग पैंतीस देशों में आज भी साक्षरता दर पचास प्रतिशत से कम है। अगर भारत में साक्षरता की दर की बात करें तो यह वर्ष 2011 में बढ़ कर 74.4 प्रतिशत तक पहुँच गई। इसमें पुरुषों की साक्षरता दर जहाँ 82.16 प्रतिशत रही, वहीं महिलाओं की साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत ही दर्ज की गई। लेकिन यह अब भी विश्व की औसत साक्षरता दर चौरासी प्रतिशत से काफी कम है।

यह ठीक है कि वर्तमान में स्कूलों में बच्चों की उपस्थिति दर सत्तर प्रतिशत जरूर है, लेकिन स्कूल छोड़ने की दर भी चालीस प्रतिशत बनी हुई है। भारत में कुल 28.7 करोड़ वयस्क पढ़ना-लिखना नहीं जानते हैं, जो कि दुनिया भर की निरक्षर आबादी का सैंतीस प्रतिशत है। देश में कम साक्षरता दर का एक कारण शिक्षा-प्राप्त लोगों का भी बेरोजगार होना है। हालांकि यह कोई नई बात नहीं है। क्योंकि अपने संक्रमण काल से ही भारतीय शिक्षा को कई चुनौतियों और समस्याओं का सामना करना पड़ा। आज भी ये चुनौतियाँ और समस्याएँ हमारे सामने हैं जिनसे दो-दो हाथ करना है।

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही भारत में शिक्षा को लेकर अनेक जद्दोजहद चलती रहीं। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने सार्वजनिक शिक्षा के विस्तार के लिए अनेक प्रयास किए। यह और बात है कि इन प्रयासों की अनेक खामियाँ भी सामने आई हैं जिन्हें दूर करने का प्रयास किया जा रहा है। बहरहाल, संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट में इस बात का स्पष्ट रूप से जिक्र किया गया है कि निरक्षरता के कारण दुनिया भर की सरकारों को सालाना

129 अरब डॉलर का नुकसान उठाना पड़ रहा है। साथ ही दुनिया भर में प्राथमिक शिक्षा पर खर्च किया जाने वाला दस प्रतिशत धन बर्बाद हो जाता है, क्योंकि शिक्षा की गुणवत्ता का ध्यान नहीं रखा जाता। इस कारण गरीब देशों में अक्सर चार में से एक बच्चा अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा की पाठ्य सामग्री भी नहीं पढ़ सकता।

हालांकि आजादी पाने के बाद पिछले सड़सठ वर्षों में भारत ने बहुआयामी सामाजिक और आर्थिक प्रगति की है। लेकिन अगर साक्षरता की बात करें तो इस मामले में आज भी हम कई देशों से पीछे है। यह ठीक है कि आजादी के समय से ही देश की साक्षरता बढ़ाने के लिए कई कार्य किए गए और कार्यक्रम बनाए गए, पर जितनी प्रगति कागजों पर दिखी, उतनी असल में हो नहीं पाई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में छह से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए संविधान में नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रस्ताव रखा गया। लेकिन आजादी के साढ़े छह दशकों से भी अधिक समय बीत जाने के बावजूद हम यह लक्ष्य हासिल नहीं कर सके। भारतीय संसद में वर्ष 2002 में 86वाँ संशोधन अधिनियम बना जिसके तहत छह से चौदह वर्ष के बच्चों के लिए शिक्षा को मौलिक अधिकार का दर्जा दिया गया, बावजूद इसके नतीजों में कोई बड़ा बदलाव नहीं हुआ। इतना ही नहीं, 2001 में सर्वोच्च न्यायालय ने सभी राज्य सरकारों को सरकारी सहायता प्राप्त सभी स्कूलों में नि:शुल्क भोजन देने की व्यवस्था करने का आदेश दिया था।

इसके अलावा, देश में 1998 में पंद्रह वर्ष से पैंतीस वर्ष के आयु वर्ग के लोगों के लिए 'राष्ट्रीय साक्षरता मिशन' और 2001 में 'सर्वशिक्षा अभियान' शुरू किया गया। इसमें वर्ष 2010 तक छह से चौदह साल के आयु वर्ग के सभी बच्चों की आठ साल की शिक्षा पूरी कराने का लक्ष्य था। बाद में संसद ने चार अगस्त 2009 को बच्चों के लिए मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा कानून को स्वीकृति दे दी। एक अप्रैल 2010 से लागू हुए इस कानून के तहत छह से चौदह वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों को नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा देना हर राज्य की जिम्मेदारी होगी और हर बच्चे का मूल अधिकार होगा। इस कानून को साक्षरता की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना गया। लेकिन इस कानून के बावजूद देश में प्राथमिक शिक्षा की तस्वीर में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं हुआ है।

दरअसल, शिक्षा अधिकार अधिनियम के चलते ज्यादा जोर दाखिले या नामांकन बढ़ाने पर रहा है। ड्राप आउट रेट यानी बीच में पढ़ाई छोड़ने की दर पर काबू पाने के लिए एक तरफ मिड-डे मील का सहारा लिया गया, तो दूसरी तरह प्राथमिक कक्षाओं में फेल न करने की नीति अपनाई गई। लेकिन न पढ़ाई की गुणवत्ता की फिक्र की गई न विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात की। पढ़ाई-लिखाई का स्तर क्या है यह स्वयंसेवी संगठन 'प्रथम' की हर साल आने वाली रिपोर्ट बताती रहती है।

विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात की हकीकत क्या है, इसका अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि अमूमन हर राज्य में शिक्षकों के हजारों पद खाली हैं। शिक्षा अधिकार अधिनियम में भवन, कक्ष, मैदान, शौचालय आदि से संबंधित बुनियादी ढाँचे की शर्तें भी रखी गई थी और इनकी समय-सीमा तय की गई थी। पर समय-सीमा बीतने के बाद भी ये शर्तें पूरी नहीं की जा सकी है। अधिनियम में ये शर्ते रखे जाने का मकसद यही रहा होगा कि सरकारों पर इन्हें पूरा करने की संवैधानिक बाध्यता रहेगी। पर अमल में कोताही बताती है कि सरकारें इस बाध्यता को लेकर गंभीर नहीं रही हैं।

भारत में साक्षरता को बढ़ाने के लिए सर्वशिक्षा अभियान, मिड डे मील योजना, प्रौढ़ शिक्षा योजना, राजीव गाँधी साक्षरता मिशन आदि न जाने कितने अभियान चलाए गए, मगर सफलता आशा के अनुरूप नहीं मिली। आज भी केरल को छोड़ दिया जाए तो देश के तमाम राज्य पूर्ण साक्षर नहीं हो पाए हैं। संयुक्त राष्ट्र की एजेंसियों ने कई देशों के साथ मिल कर साक्षरता को बढ़ाने के लिए पर्याप्त कदम उठाए हैं और इसके लिए कई लक्ष्य भी निर्धारित किए हैं। संयुक्त राष्ट्र ने चार लक्ष्य- सभी के लिए शिक्षा, सहस्राब्दी विकास लक्ष्य, संयुक्त राष्ट्र साक्षरता दशक, संयुक्त राष्ट्र निरंतर विकास के लिए शिक्षा का दशक रखे हैं। भारत में इन लक्ष्यों को हासिल करने के लिए सर्वशिक्षा अभियान, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, मिड-डे-मिल योजना जैसे कार्यक्रम चलाए गए हैं लेकिन इन्हें पूरी तरह से लागू करने में सफलता नहीं मिल पाई है। इनमें से मिड-डे मील ही एक ऐसी योजना है जिसने देश में साक्षरता बढ़ाने में थोड़ी अहम भूमिका निभाई। इसकी शुरुआत तमिलनाडु से हुई, जहाँ 1982 में तत्कालीन मुख्यमंत्री एमजी रामचंद्रन ने पंद्रह साल से कम उम्र के स्कूली बच्चों को प्रतिदिन नि:शुल्क भोजन देने की योजना शुरू की थी।

मिड-मेल की उपयोगिता जाहिर होने के बावजूद अब इस योजना के पर कतरे जा रहे हैं। वर्तमान सरकार ने इसके आवंटन में कटौती कर दी है, जिसका प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौम बनाने के लक्ष्य पर बुरा असर होगा। एक तरफ ज्ञान आधारित समाज बनाने की बात होती है और दूसरी तरफ एक ऐसी योजना का आवंटन घटा दिया जाता है जिसने ड्रापआउट रेट को कम करने में भूमिका सिद्ध कर दी है, यह विरोधाभास क्यों है? ज्ञान आधारित समाज के उद्देश्य को इतना व्यापक क्यों नहीं बनाया जाता कि उसमें हाशिये के लोग भी शामिल दिखाई दें? सरकार ने कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किया है। पर इसे समूची शिक्षा का अंग क्यों नहीं बनाया जाता? अगर ज्ञान आधारित समाज और कौशल विकास के तकाजे को समूची आबादी के मद्देनजर देखा जाए तो शिक्षा नीति को भी अधिक से अधिक समावेशी बनाने की जरूरत महसूस होगी और यह हमारे देश के लिए अच्छा ही होगा।

शिक्षा-व्यवस्था की एक बुनियादी समस्या इसमें निहित विषमता भी है। दो तरह की शिक्षा प्रणाली चल रही है- एक उनके लिए जो इसे खरीद सकते हैं, और दूसरी उनके लिए, जो सरकारी स्कूल न हों तो निरक्षर रह जाने के लिए अभिशप्त होंगे। यह स्थिति सबसे ज्यादा प्राथमिक शिक्षा में है। कोठारी आयोग समेत शिक्षा पर बनी सभी प्रमुख समितियों ने समान शिक्षा प्रणाली की वकालत की थी। आज देश में समान शिक्षा प्रणाली के लिए कहीं से कोई सशक्त आवाज नहीं उठ रही है। उलटे शिक्षा में बाजार का दखल और बढ़ता जा रहा है। ऐसे में शिक्षा की भावी तस्वीर कैसी होगी इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। ❑

जीवन मूल्यों का क्षरण चिन्ता का विषय

❑ **प्रकाश वया**

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया, सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग भवेत्। जैसी लोक कल्याणी उद्घोषणा करने वाला भारत अपनी आजादी के 69वें वर्ष में बड़ी शान से दस्तक दे रहा है। 68 वर्षों का उसका सफर भौतिक और आर्थिक विकास की अपेक्षा से उल्लेखनीय रहा है तो दूसरी ओर आतंकवाद, अलगाववाद, जातिवाद, भाषावाद और भ्रष्टाचार ने हमारे गण को खोखला करने में भी कसर नहीं छोड़ी है। स्वहित पोषण की संकुचित मनोवृत्ति ने पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय ढाँचे को कमजोर करने का ही कार्य किया है, जिसका खामियाजा आज हम भोगने पर मजबूर हैं। विडंबना यह है कि परिवार टूट रहे हैं, पश्चिम की आबो हवा ने पारिवारिक मर्यादाओं और परम्पराओं को तार-तार कर दिया है। सच्चाई तो यह है कि हमारी गौरवशाली सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और संवर्धन करना हमारे लिए मुश्किल होता चला जा रहा है, आज का व्यक्ति स्वतन्त्र होने के बजाय स्वच्छन्द हो गया है। व्यक्ति का ज्ञान अभिवर्धित हुआ है, उसकी आर्थिक स्थिति भी सुधरी है, परन्तु मनुष्य बनकर जीने का संकट पैदा हो गया है, मानवीय जीवन मूल्यों का क्षरण प्रबुद्ध समाज के लिए चिन्ता का विषय बन गया है।

किंवदंति है कि इस पुण्य धरा पर जन्म लेने के लिए देवता भी तरसते हैं, इस भाव सम्पदा से अभिसिंचित इस धरा पर आविर्भूत मानव क्यों कर अपने सत्व को भूल रहा है? अपनी पहचान और अपनी अस्मिता को भूल कर अमर्यादित आचरण करना कहाँ की समझदारी है, क्योंकि हमारी संस्कृति का पोषण जिन मूल्यों से हुआ है, वे अतिशय उदात्त होकर मानव जाति को मानव बनकर जीने का सलीका और तरीका दे रहे हैं, परन्तु भौतिकवाद की चकाचौंध से दिग्भ्रमित इस राष्ट्र की संतति के कदम लड़खड़ा रहे हैं, आवश्यकता है उसे संभाल कर गिरने से बचाने की। हाल ही में जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों का आयु वर्गानुसार जो विश्लेषण प्रकट हुआ है- भारत की आबादी का कुल 65 प्रतिशत युवक-युवतियाँ 35 वर्ष से कम आयु के हैं। परिवार, समाज और राष्ट्र के उत्कर्ष में युवा वर्ग सबसे उर्जावान और क्रियाशील मानवीय संसाधन माना गया है, सच्चाई तो यह है कि नौजवान इस महान राष्ट्र का प्राणतत्त्व है, इसलिए उसकी अन्तर्निहित प्रतिभा, क्षमता और उर्जा को तराशने और प्रकट करने का दायित्व वरिष्ठ और प्रबुद्धजनों का बनता है। सबल, समृद्ध, समर्थ और प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र की संकल्पना को तभी साकार किया जा सकता है जब हम पूरी ताकत से नौजवान की उर्जा का सकारात्मक रूपान्तरण करने के लिए मन-प्राण से जुट जायें, यही हमारी नियति है, हमारा धर्म है। युवा राष्ट्र की अनमोल धरोहर हैं, उसका संरक्षण और संवर्धन सम्यक रूप से कर हम राष्ट्र के भविष्य का निर्धारण कर सकते हैं, हमारी लोक कल्याणकारी सांस्कृतिक विरासत और परम्पराओं के सापेक्ष हमारी संतति का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक अभिसिंचन कर उसका आत्मिक उत्कर्ष करना सम्भव हो सकता है, असल में आत्मविश्वासी, धैर्यवान, प्रज्ञाशील और प्रामाणिक व्यक्तित्व वाला महत्त्वाकांक्षी युवक ही परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए लाभदायी और शुभकर हो सकता है। 'माताभूमि पुत्रोऽह पृथ्वीया:' की उदात्त भाव धारा पर आरूढ़ हमारी प्रबुद्ध मनीषा ही इस राष्ट्र की एकता, अखण्डता और सम्प्रभुता का संरक्षण और उसे अक्षुण्ण बनाये रखने में समर्थ हो सकती है, इस सच्चाई को समझ कर व्यक्ति निर्माण के लिए सक्षम माध्यम शिक्षा के ढाँचे को राजनीतिक पूर्वाग्रहों और दुराग्रहों से मुक्त करना पड़ेगा।

सत्ता परिवर्तन के साथ ही शिक्षा के पाठ्यक्रम को खंगालना और विचारधारा विशेष को अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा और

शिक्षा राष्ट्र का मूलाधार है, विडंबना यह है कि आजादी के इतने वर्षो बाद भी हम एक सम्यक, सर्वमान्य और सर्वग्राही शिक्षा नीति का निर्धारण नहीं कर पाये, जो कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी नहीं तो और क्या है? बुद्धि-लब्धि की दृष्टि आज भी यह महान राष्ट्र दुनिया के रंग मंच पर 'विश्व गुरु' के रूप में खड़ा दिखाई देता है, आज हमारे प्रतिभाशाली नौजवान अपने बुद्धि कौशल से ज्ञान और शक्ति का दम्भ भरने वाले देशों में धूम मचा रहे हैं, अपना लोहा मनवा रहे हैं, परन्तु जिस द्रुत गति से शिक्षा का व्यावसायीकरण और बाजारीकरण हो रहा है उसने हमारी प्रतिभाओं को बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी जैसे संक्रमित दुष्चक्र में फँसा कर अनेकों कुण्ठाओं और हीन मानसिकता का शिकार बना दिया है।

तुष्टीकरण के औजार के रूप में इस्तेमाल करना आम बात हो गई है, इस पर विराम लगाये बिना भारतीय सामाजिक सांस्कृतिक और भौगोलिक परिवेश के अनुकूल शिक्षा का ढाँचा खड़ा कर पाना दूर की कोड़ी है। शिक्षा राष्ट्र का मूलाधार है, विडंबना यह है कि आजादी के इतने वर्षों बाद भी हम एक सम्यक, सर्वमान्य और सर्वग्राही शिक्षा नीति का निर्धारण नहीं कर पाये, जो कि हमारी सबसे बड़ी कमजोरी नहीं तो और क्या है? बुद्धि-लब्धि की दृष्टि आज भी यह महान राष्ट्र दुनिया के रंग मंच पर 'विश्व गुरु' के रूप में खड़ा दिखाई देता है, आज हमारे प्रतिभाशाली नौजवान अपने बुद्धि कौशल से ज्ञान और शक्ति का दम्भ भरने वाले देशों में धूम मचा रहे हैं, अपना लोहा मनवा रहे हैं, परन्तु जिस द्रुत गति से शिक्षा का व्यावसायीकरण और बाजारीकरण हो रहा है उसने हमारी प्रतिभाओं को बेरोजगारी, अल्प बेरोजगारी जैसे संक्रमित दुष्चक्र में फँसा कर अनेकों कुण्ठाओं और हीन मानसिकता का शिकार बना दिया है। हकीकत तो यह है कि अपना पेट काटकर अपने लाड़लों के लिए अपना सब कुछ दाव पर लगा देने वाले माँ-बाप जब उन्हें अपनी डिग्री और डिप्लोमा को हाथ में थामें दर-दर की ठोकरें खाते हुए मजबूर देखते हैं तो उनका अन्तस: धार-धार रोता है, सवाल यह है कि एक कुण्ठा और हीनता से ग्रस्त व्यक्ति परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए कितना कुछ अवदान कर सकता है? विचारणीय विषय है। अपने खून पसीने से अर्जित कागज के टुकड़ों के बदले शिक्षा के व्यवसायी एक कागज का टुकड़ा थमा कर उन्हें सब्ज बाग दिखा कर उनकी जिंदगी के साथ एक तरह से खिलवाड़ कर रहे हैं, उनकी मिजाजपुर्सी इस बात को लेकर है उनके गोदाम और तल घर नोटों के बोरों से भरे पड़े हैं।

शिक्षा के पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप में देने की संकल्पना सामने आ रही है, प्रयोग भी किये जा रहे हैं, परन्तु इसके गुणावगुण पर चिन्तन और विशद विमर्श किये बिना निर्णय तक पहुँचना फलदायी नहीं होगा, ऐसी व्यवस्था में नियन्त्रण और सतत् निगरानी नितान्त आवश्यक हुआ करती है क्योंकि आपसी मिली भगत और अवांछित दखलंदाजी के खतरे से इनकार नहीं किया जा सकता। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रबन्ध के लिए उसके बिकाऊ और प्रोफेशनल होने पर हमें कहीं न कहीं लगाम तो लगानी पड़ेगी, अन्यथा सबकुछ गुड़ गोबर हो जाने वाला है। शिक्षा में भाषा का सवाल भी अतिशय महत्त्व का है, हमारी अपनी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषा की अनदेखी कर विदेशी भाषा के धीमे जहर को कण्ठ की शोभा बनाना भी तो समझदारी नहीं है, इस सच्चाई को समझकर सम्प्रति व्याप्त भाषिक प्रदूषण का निस्तारण भी आवश्यक है, अन्यथा 'ढाक के वही तीन पात' वाली कहावत चरितार्थ हुए बिना नहीं रहेगी। आज जरूरत इस बात की भी है कि जिस भाषा को हमने उच्चतम विद्वता का धारक और वाहक मान लिया है, जरूरत है उससे उबरने का अभ्यास करने की। तभी हम इस राष्ट्र का भला कर पायेंगे। हमारी संस्कृति, हमारी परम्परायें, हमारा गौरवशाली अतीत और हमारी अपनी भाषा के प्रति आत्मीय भावों का प्रस्फुटन हमें फिर से दुनिया का सिरमौर बना सकता है, इसमें कहीं मुझे द्वैध नहीं लगता, वैसे हम आज तक इस उदात्त भाव सम्पदा के संचरण से ही जिन्दा हैं। शिक्षा को हमेशा के लिए प्रयोगधर्मी बना देना भी तो उचित नहीं है, आजादी के बाद नवाचारों के लिए जितने प्रयोग, संगोष्ठियाँ, सेमिनार और प्रशिक्षण शिविर-शिक्षा क्षेत्र में हुए हैं शायद ही अन्य क्षेत्र में हुए हों, परन्तु इतना सब कुछ करने के बाद भी अन्तिम निष्कर्ष तक नहीं पहुँचना भी तो हमारी कमजोरी है, हकीकत तो यह भी है कि पश्चिम की नकल करने की आदत ने भी हमें हमारे वैचारिक धरातल पर खड़े होने में रुकावट पैदा की है जरूरत है अपनी जमीन तलाशने की और इस आदत से बाज आने की। शिक्षा परिवार, समाज और राष्ट्र का दर्पण है, पहचान है, इनकी अस्मिता है इस सच्चाई के सापेक्ष हमें शिक्षा का सम्यक ढाँचा खड़ा करना पड़ेगा, तभी जाकर हम परिवार, समाज और राष्ट्र की अपेक्षा से परिस्थितिजन्य व्युत्पन्न वैचारिक प्रदूषण से विमुक्त हो सकेंगे, असल में व्यक्ति निर्माण हमारी प्राथमिक आवश्यकता है और यह महनीय कार्य शिक्षा ही कर सकती है। प्रतियोगी परीक्षाओं में आज जिस तरह से हमारी प्रतिभाओं को पैसे के बल पर नकल के नये-नये तरीके इजाद कर पीछे धकेला जा रहा है गम्भीर चिन्ता और चिन्तन का विषय है, यदि समय रहते इस पर लगाम नहीं लगी तो सब कुछ गुड़ गोबर हो जायेगा। हमारा बालक नैसर्गिक न्याय का अधिकारी है, परीक्षाओं की शुचिता बनी रहे इसकी कारगर व्यवस्था करनी पड़ेगी तभी उस राष्ट्र के कर्णधार और अनमोल धरोहर के साथ हम न्याय कर पायेंगे, ऐसा करना हमारा धर्म है, इसलिए हमें अधिकतम और वांछित भौतिक और मानवीय संसाधनों को पूरी ताकत से झौंकना पड़ेगा साथ ही हमारा बालक उच्चाकाँक्षी और महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए, परन्तु उसे अनावश्यक अंधी दौड़ और होड़ से भी बचाना होगा, प्रतिस्पर्धा पूरी तरह से स्वस्थ और पारदर्शी हो, ऐसा प्रबन्ध और नियन्त्रण हमें करना पड़ेगा, अन्यथा हमारी मनीषा कुंद होकर टूट जायेगी जिसके दूरगामी परिणाम अच्छे नहीं होंगे। ❑

(प्राध्यापक, भीण्डर, जि. उदयपुर)

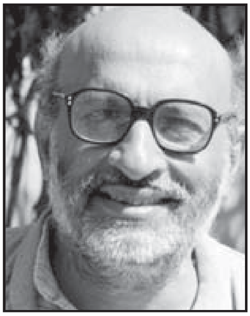

इसे हमें स्कूल कहना पड़ता है

❑ अरविंद गुप्ता

यह एक गजब के निराले स्कूल की कहानी है, जो सत्तर के दशक की शुरुआत में कई साल तक मौजूद था। अमेरिका के सबसे चर्चित शिक्षाविद् जॉन होल्ट ने अपनी एक किताब में इस स्कूल का बड़ा ही सजीव वर्णन किया है। एमआईटी के एलन फल्बेल इस वर्णन से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने इस स्कूल में एक साल बिताकर इसके ऊपर पीएच.डी. थीसिस लिख डाली। फिल्मकार पेगी हग्स यहाँ दो साल रहे और उन्होंने स्कूल पर 'वी हैव टू कॉल इट अ स्कूल' नाम से फिल्म बनाई।

फिल्म की शुरुआत में यहाँ का एक शिक्षक कहता है, 'चूंकि बच्चों को स्कूल जाना ही पड़ता है और इसलिए हम अगर इसे स्कूल नहीं कहेंगे तो शायद वे यहाँ नहीं आएंगे।' लेकिन सिवाय इस बात के कि स्कूल टाइम में बच्चे यहाँ रहते हैं, यह किसी भी कोण से स्कूल जैसा नहीं है। यहाँ कुछ भी 'पढ़ाया' नहीं जाता। यह एक ऐसी जगह है जहाँ कोई 85 बच्चे और कुछ बड़े अपने-अपने फितूर में मशगूल रहते हैं। बड़े लोग पारंपरिक अर्थों में शिक्षक नहीं है। न ही किसी के भी पास बी.एड. या इसी तरह की अन्य शिक्षण डिग्री है। लेकिन इस चौड़ी-चकली दुनिया में सालों तक काम करने के बाद उनके पास तरह-तरह के हुनरों का ऐसा खजाना है, जिन्हें बच्चे बेइंतहा पसंद करते हैं।

'लिटिल न्यू स्कूल' नाम का यह स्कूल डेनमार्क के कोपेनहेगन शहर में 1970 दशक के शुरुआती वर्षों में खुला था। डेनिश सरकार अभिभावकों द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों के 85 प्रतिशत खर्चों को उठाने के लिए जानी जाती है। स्कूल चलाने वाले अभिभावकों को मात्र 15 प्रतिशत खर्चा इकट्ठा करना पड़ता है। इस रियायत से यहाँ कई प्रयोगात्मक स्कूलों को फलने-फूलने का मौका मिलता है। इस स्कूल को शुरु करने वालों ने इससे पहले इसी तरह के कुछ अन्य स्कूलों में पढ़ाया था। इन स्कूलों में से कई बाद में बच्चों के 'परिणामों' को लेकर इतने संजीदा हो गए कि सामान्य स्कूलों की राह पर चल निकले। इस बदलाव से निराश चन्द लोगों ने बच्चों के लिए फिर से एक नई जगह बनाने का फैसला लिया।

यह स्कूल एक औद्योगिक इलाके में है और इसके पास कुल मिलाकर एक बड़ा हॉल व दो छोटे कमरे हैं। स्कूल में कोई पाठ्यपुस्तक या

'चूंकि बच्चों को स्कूल जाना ही पड़ता है और इसलिए हम अगर इसे स्कूल नहीं कहेंगे तो शायद वे यहाँ नहीं आएंगे।' लेकिन सिवाय इस बात के कि स्कूल टाइम में बच्चे यहाँ रहते हैं, यह किसी भी कोण से स्कूल जैसा नहीं है। यहाँ कुछ भी 'पढ़ाया' नहीं जाता। यह एक ऐसी जगह है जहाँ कोई 85 बच्चे और कुछ बड़े अपने-अपने फितूर में मशगूल रहते हैं। बड़े लोग पारंपरिक अर्थों में शिक्षक नहीं है। न ही किसी के भी पास बी.एड. या इसी तरह की अन्य शिक्षण डिग्री है। लेकिन इस चौड़ी-चकली दुनिया में सालों तक काम करने के बाद उनके पास तरह-तरह के हुनरों का ऐसा खजाना है, जिन्हें बच्चे बेइंतहा पसंद करते हैं।

पाठ्यक्रम नहीं पढ़ाया जाता। यहाँ न कोई घंटी बजती है, न पीरियड लगते हैं। न होमवर्क होता है न ही क्लास वर्क। जाहिर है यहाँ इम्तहान, टेस्ट, जाँच या ग्रेड जैसे चीजें भी नहीं हैं। बेशक कई दिलचस्प किताबें यहाँ हैं और एक वर्कशॉप व जिम्नेजियम भी हैं, जहाँ बच्चे अपने हाथों से कई तरह की चीजें बना सकते हैं।

स्कूल के पास किसी भी तरह का विज्ञान सम्बन्धी कोई भारी-भरकम उपकरण नहीं है और न ही यह इस तरह की चीज़ें खरीदना चाहता है। तो यहाँ बच्चे दिन-भर करते क्या हैं? वे संगीत से शुरुआत करते हैं। कुछ शिक्षक पेशेवर संगीतकार हैं और वे संगीत के प्रति उनके प्रेम को बच्चों के साथ बाँटते हैं। सुबह-सुबह करीब घंटे भर तक बच्चे संगीत की स्वर-लहरियों में डूबते-उतरते हैं। उनकी गतिविधियाँ अत्यंत सहज और लयदार होती हैं।

स्कूल में किताबों का छोटा सा किन्तु शानदार संग्रह है। वर्कशॉप में बढईगिरी के साधारण औजार तथा गर्म करने व धातुकर्म के कुछ उपकरण मौजूद हैं। इनके पास धातुओं को काटने और जोड़ने के लिए ऑक्सीएसीटिलीन सिलिंडर और एक टॉर्च भी है। साइंस और गणित की कई गुत्थियाँ यहाँ हैं, लेकिन गणित की प्रयोगशाला नहीं है। इसी तरह अमेरिका और ब्रिटेन के स्कूलों में ज़रूरी समझा जाने वाला नफील्ड जैसा जाना-माना गतिविधि आधारित साइंस प्रोग्राम भी ये नहीं चलाते। चित्रकारी के लिए अलग से कोई कमरा इनके पास नहीं है, लेकिन चित्रकारी में बच्चों की महारत के प्रमाण यहाँ-वहाँ देखे जा सकते हैं। यहाँ दो हथकरघे और एक सिलाई मशीन भी है। यहाँ एक मछलियों का तालाब है, जिसमें कोई बच्चा चाहे तो पूरा दिन सुनहरी मछलियों को निहारते हुए बिता सकता है। संगीत कक्षा में एक पियानो, कुछ गिटार और एक शिक्षक का बनाया हुआ बेस फिडल व कुछ ड्रम हैं।

स्कूल बहुत साधन संपन्न नहीं है। किसी भी परंपरागत स्कूल में पाए जाने वाले सामान की तुलना में यहाँ आपको कुछ कम भी चीजें दिखाई देंगी। लेकिन जो कुछ भी है, वह बच्चों के इस्तेमाल के लिए है। किताब या किसी सामान को हासिल करने के लिए उन्हें किसी कर्मकांड से होकर नहीं गुजरना पड़ता है।

स्कूल में सामान की कमी का एकमात्र कारण यही है कि स्कूल की सामर्थ्य खरीद पाने की नहीं है। मगर बच्चे दूसरी संस्थाओं से जरूरी सामान उधार लेने के मामले में पूरी तरह समर्थ हैं। ❑

जाने माने शिक्षाविद्

(अनुवाद: आशुतोष उपाध्याय)

जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख शिक्षक संघ की प्रान्त बैठक जम्मू में सम्पन्न

ऑल जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख टीचर्स फेडरेशन की जम्मू कश्मीर प्रान्त बैठक 28 दिसम्बर 2015 को कार्यकारी अध्यक्ष महेश्वर प्रसाद की अध्यक्षता में हुई। बैठक में जम्मू प्रांत के जिला अध्यक्ष, जिले के मन्त्री एवं प्रान्त टोली के सदस्यों ने भाग लिया। बैठक में तीन विषयों पर चर्चा हुई। जनवरी 2016 कर्तव्य बोध दिवस व अप्रैल 2016 शाश्वत जीवन मूल्यों पर जम्मू कश्मीर प्रान्त का जम्मू में एक विशाल कार्यक्रम किया जायेगा। साथ ही सरकार द्वारा बनाई जा रही तबादला नीति एवं अन्य मुद्दों पर चर्चा की गई।

बैठक के बाद शिक्षकों का प्रतिनिधि मण्डल शिक्षा मंत्री प्रिया सेठी से मिला जिसमें नई पदोन्नति, शिक्षकों की नियुक्ति, शिक्षकों का तबादला एवं अन्य शिक्षकों की समस्याओं की विस्तारपूर्वक चर्चा की। प्रिया सेठी ने माँगों को जल्दी पूरा करने का आश्वासन दिया।

बैठक का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रान्त महामन्त्री रतन शर्मा ने कहा कि अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ द्वारा देश भर में एक समान कार्यक्रम योजना के अन्तर्गत जम्मू कश्मीर में ऑल जम्मू कश्मीर एवं लद्दाख टीचर्स फेडरेशन के रूप में काम करती है। इसलिए ऑल जे.के.एल.टी.एफ. केवल शिक्षकों की माँगों पर ही काम नहीं करता बल्कि इसके साथ-साथ राष्ट्र एवं समाज को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रहित में शिक्षा पर काम करता है।

बैठक में सह प्रान्त अध्यक्ष प्रदीप कुमार, प्रान्त मन्त्री करतार, कठुआ जिला अध्यक्ष शिव देव, रियासी जिला अध्यक्ष मन्जीत सिंह, प्रान्त कार्यकारिणी सदस्य राकेश शर्मा। उधमपुर जिलाध्यक्ष कृष्ण चन्द, जिला मन्त्री राधा कृष्ण, रियासी जिला मन्त्री ब्रह्म दत्त शर्मा एवं अन्य सदस्य उपस्थित थे।

मूल अधिकार बनाने की चुनौती

❑ गिरीश्वर सिंह

भारत के सभी बच्चों को प्राथमिक शिक्षा पहुँचाने की कोशिश बड़ी लंबी और कठिन होती दिख रही है। जब भारत में अंग्रेजों का राज था, तब बड़ौदा के महाराजा ने 1891 में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था शुरू की थी। पश्चिम में एक रियासत में भी इसी तरह का प्रयास हुआ था और अन्य कई क्षेत्रों में भी ऐसी कोशिश हुई थी। गुलामी के दिनों में देश के राष्ट्रीय नेतृत्व ने औपनिवेशिक शासकों से पूरे देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने पर जोर दिया था, पर अंग्रेजों को सत्ता सुख बनाए रखने के चलते यह रास नहीं था और यह माँग अस्वीकृत हो गई। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने निरक्षरता को देश के लिए बेहद 'शर्मनाक' माना और कहा कि अंग्रेज जब भारत पहुँचे थे, तब देश ज्यादा साक्षर था। गाँधी जी और उनके कई सहयोगियों के प्रयास से देश में शिक्षा की चेतना जगी और निरक्षरता की चुनौती से लड़ने की देसी तकनीक पर काम शुरू हुआ ताकि हर देशवासी एक सार्थक बुनयादी शिक्षा जरूर पा सके। इसके बाद देश को बीसवीं सदी के मध्य आते-आते जब स्वतंत्रता मिली तो देश के कर्णधारों ने इस ओर ध्यान दिया। दस साल के अंदर सभी बच्चों को बेसिक शिक्षा देने और निरक्षरता उन्मूलन का लक्ष्य बनाकर प्रयास शुरू हुआ, पर संविधान का यह वादा पूरा न हो सका। साक्षरता के लिए नई नीतियाँ और तरीके अपनाए गए।

बीसवीं सदी के अंत तक यह साफ हो गया कि इसके लिए देश के अपने संसाधन नाकाफी हैं और विदेश की सहायता चाहिए। बाहर से आर्थिक सहायता ही नहीं विशेषज्ञ भी आए और उनके साथ निरंतर संवाद भी चलता रहा। इसके चलते साक्षरता के आँकड़ों में जरूर वृद्धि हुई। पिछड़े क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा भी बढ़ी और कई नई संस्थाएं पनपीं। यह लड़ाई इक्कीसवीं सदी में एक नए संकल्प के साथ शुरू हुई। 'सर्व शिक्षा अभियान' की एक बड़ी ही महत्त्वाकाँक्षी मुहिम छेड़ी गई। अपने संसाधनों की सहायता से साक्षरता के लिए नई पहल हुई। लेवी (सेस) लगाई गई और इस योजना के लिए अतिरिक्त संसाधन जुटाए गए। स्कूलों की आधार-संरचना को उन्नत करने की कोशिश भी शुरू हुई। बच्चों की स्कूलों में दाखिला तो जरूर बढ़ा पर गुणात्मक रूप से समृद्ध शिक्षा का सपना दूर ही बना रहा। राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान भी शुरू हुआ ताकि माध्यमिक स्तर की शिक्षा सब तक पहुँचा दी जाए। सूचना प्रौद्योगिकी को भी स्कूल में लाने की कोशिश शुरू हुई। इस बीच संसद ने संविधान में

प्रश्न है कि क्या सभी बच्चों के लिए शिक्षा के मूल अधिकार देने का सपना पूरा हुआ? इस प्रश्न का शायद हाँ या नहीं में कोई स्पष्ट उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, पर हमारे सामने कई सवाल मुँह बाए खड़े हैं। क्या सिर्फ कानून बना देना ही काफी है? क्या एक केंद्रीय कानून काम कर सकेगा? यह प्रश्न भी उठता है कि क्या यह कानून गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने के लिए पर्याप्त है। सवाल और भी हैं। बच्चे स्कूलों में क्यों नहीं हैं, क्यों माता-पिता बच्चों को निजी स्कूलों में रखना चाहते हैं, क्या मात्र शिक्षा की गुणवत्ता ही इसका कारण है, सरकारी स्कूलों का प्रबंधन कैसे दुरुस्त किया जाए। साथ ही शिक्षा के मामले में केंद्र-राज्य के रिश्ते और शिक्षा के अधिकार पर भी विचार बेहद आवश्यक है।

संशोधन करते हुए शिक्षा को मूल अधिकार बनाया जो अभी तक सिर्फ एक निर्देशात्मक नियम भर था। अगस्त 2009 में संसद ने '6 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिनियम' स्वीकार किया। भारतीय शिक्षा के लिए यह एक युगांतरकारी घटना थी। इस अधिनियम में प्रावधान हुआ कि अगले पाँच वर्षों में यह कार्य रूप ले लेगा। वर्ष 2015 इस अधिनियम को लागू करने की तिथि है।

प्रश्न है कि क्या सभी बच्चों के लिए शिक्षा के मूल अधिकार देने का सपना पूरा हुआ? इस प्रश्न का शायद हाँ या नहीं में कोई स्पष्ट उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता, पर हमारे सामने कई सवाल मुँह बाए खड़े हैं। क्या सिर्फ कानून बना देना ही काफी है? क्या एक केंद्रीय कानून काम कर सकेगा? यह प्रश्न भी उठता है कि क्या यह कानून गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया कराने के लिए पर्याप्त है। सवाल और भी हैं। बच्चे स्कूलों में क्यों नहीं हैं, क्यों माता-पिता बच्चों को निजी स्कूलों में रखना चाहते हैं, क्या मात्र शिक्षा की गुणवत्ता ही इसका कारण है, सरकारी स्कूलों का प्रबंधन कैसे दुरुस्त किया जाए। साथ ही शिक्षा के मामले में केंद्र-राज्य के रिश्ते और शिक्षा के अधिकार पर भी विचार बेहद आवश्यक है। बच्चों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के विस्तार के जो प्रयास पिछले दो दशक में हुए हैं, इसकी वजह से इनके स्वरूप में भी बदलाव आया है। अब यह प्राथमिक स्कूलों में दाखिले तक ही सीमित नहीं रह गया है। छात्रों की स्कूल में उपस्थिति को बढ़ाने, कक्षा में उनकी सक्रिय भागीदारी को बढ़ाने, स्कूल छोड़ने की प्रवृत्ति को कम करने और माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की प्रासंगिकता सुनिश्चित करने के मुद्दे भी शामिल हो गए हैं। अब पूरा जोर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा की गुणवत्ता बढ़ाने और स्कूल तक बच्चों की पहुँच के साथ दाखिला बढ़ाने पर भी है। भारत के

संविधान ने सभी बच्चों को सीखने और विकसित होने के प्रति प्रतिबद्धता दर्शाई थी, लेकिन विभिन्न समूहों के बीच अवसरों को लेकर बड़ी विषमता है। सामाजिक रूप से वंचित अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, मुस्लिम बच्चों, लड़कियों और वो बच्चे जो किन्हीं कारणों से अक्षम हैं, त्रासदी प्रभावित बच्चे और वो जो शहर की मलीन बस्तियों में रहते हैं, अभी भी बड़ी तादाद में शिक्षा से वंचित हैं।

विगत वर्षों में गुणवत्ता का अर्थ भी बदला है। अब उसमें उन दशाओं को भी शामिल किया जा रहा है जो गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को संभव बनाती हैं। गुणवत्ता सिर्फ अध्यापक की जिम्मेदारी नहीं है। वह एक पूरी व्यवस्था का भी गुण है। कक्षा में क्या घटित हो रहा है, यह कई बातों पर निर्भर करता है। अत: गुणवत्ता की बात करते समय विद्यालय का भौतिक स्वरूप और सुविधाएँ, सीखने-सिखाने के लिए उपलब्ध सामग्री, कक्षा में चलने वाली प्रक्रियाएँ, मूल्यांकन की विधि, अध्यापकों को मिलने वाला अकादमिक सहयोग और समर्थन और स्कूल चलाने में समुदाय की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। स्कूल के विकास में समुदाय की भागीदारी कैसे बढ़े और स्कूल के स्तर पर प्रबंधन और नियोजन में अध्यापक को भी स्थान मिले, धन के अभाव, व्यवस्था में भरोसे की कमी आदि समस्याओं से भी कड़ाई से निपटना होगा। गौरतलब है कि पिछले पंद्रह बीस वर्षों में किस्म-किस्म के निजी विद्यालयों की बाढ़ आ गई है। इनकी संख्या इतनी बढ़ गई है कि निजी (प्राइवेट) शिक्षा ने प्राथमिक शिक्षा का मूल स्वभाव ही बदल डाला है। एयर कंडीशंड स्कूल बदलाव के तहत अब अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक मानकों का पालन करते हैं और काफी ऊँची फीस लेते हैं। इन स्कूलों का फैशन ऐसा बढ़ा है कि निजी स्कूल अब मलीन बस्तियों और गाँवों में खुल रहे हैं, जहाँ कोई भी सुविधा नहीं है। इनमें से कई गैर मान्यता प्राप्त होते हैं और यहाँ शिक्षकों की गुणवत्ता, वेतन और सेवा की दशाएँ इतनी खस्ताहाल हैं कि अध्यापकों में बच्चों को अच्छी तरह पढ़ाने का उत्साह ठंडा पड़ जाता है। आज जब देश के लिए नई शिक्षा नीति बनाई जा रही है तो प्राथमिक शिक्षा के पूरे परिदृश्य पर गौर करना होगा, व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने का तंत्र विकासित करना होगा और क्रांतिकारी कदम उठाने होंगे। आज के तथाकथित ज्ञान युग में देश की भागीदारी की यह न्यूनतम आवश्यकता है कि प्राथमिक शिक्षा को पटरी पर लाया जाए। ❑

शिक्षा : संवादहीनता के परिसर

❑ **रमेश दवे**

क्यों ऐसा हो रहा है कि हमारा लचीला संविधान और खर्चीला लोकतंत्र फिसलती जबान का लोकतंत्र बन गया है। नेता, अभिनेता, बौद्धिक, साहित्यकार, समाजकर्मी, वैज्ञानिक, राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय लेखक, पत्रकार सब एक साथ हमारे लोकतंत्र को बयानतंत्र में बदल रहे हैं? बयान भी कैसे? जो आज कहते हैं, कल उसे ही काट देते हैं। तोड़-मरोड़ कर पेश करने के लिए एक कठघरा बयानबाजों ने बना रखा है- मीडिया, सोशल मीडिया और अखबारों को। हमने अपनी शिक्षा से यह कैसा समाज रचा जो संवाद कम और विवाद ज्यादा पैदा करता है?

सच पूछा जाए तो शिक्षा और समाज के बीच सभ्यता-संवाद का अंत हो गया है। अब तो संवाद केवल नेता-अभिनेताओं के बीच है या सरकार और सरकार-विरोधी के बीच। आमजन तो मूक श्रोता है या टीवी का बेचैन दर्शक। उसके पास राय देने का कोई मंच नहीं, मीडिया नहीं, वह तो केवल सही और गलत की चर्चा आपस में कर लेता है और किसी नए राजनीतिक, सामाजिक या आपराधिक समाचार और समाचारों पर बयान सुनने की प्रतीक्षा करता रहता है। शिक्षा का समाज से जो सभ्यता-संवाद होना चाहिए, वह इसलिए भी नहीं हो रहा कि शिक्षा समाज से दूर चली गई है। वह अब दूर-शिक्षा या डिस्टेंस एजूकेशन का नया रूप धारण कर मीडिया माध्यमों का औजार बन गई है।

कार्लाइल ने विश्वविद्यालयों की आलोचना करते हुए कहा था कि विश्वविद्यालय है ही क्या, सिवा किताबों के संग्रहालय के। अब तो किताबों के संग्रहालय भी नहीं रहे। उत्तर-आधुनिक समय ने तो इतिहास, साहित्य, साहित्यकार की मौत के साथ किताबों की मौत भी घोषित कर दी है। इसलिए किताबों की मौत का मतलब ग्रंथालयों या लाइब्रेरियों की मौत भी हो गया है। इसका एक परिणाम यह है कि शिक्षा का शिक्षक-प्राध्यापक के बीच का संवाद भी मर चुका है।

यूजीसी और सरकारों ने महाविद्यालयों को सेमिनार करने, शोधपत्र लिखवाने और प्राध्यापकों का ज्ञान-उन्मुखीकरण या ज्ञान-उन्नयन करने के प्रावधान तो कर दिए हैं, बायोमेट्रिक प्रणाली से उपस्थिति दर्ज करना अनिवार्य कर दिया है, क्या इसका यह अर्थ नहीं कि यूजीसी और सरकारों को विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों की योग्यता और कर्तव्य के प्रति ईमानदारी पर भरोसा नहीं रहा या प्राध्यापकों ने अपने आचरण और अध्ययन-

अब एक प्रश्न उन शिक्षाविदों से, जो समय-समय पर विचारों के ताने-बाने या तो विश्वविद्यालय परिसरों या उच्च राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में बैठ कर बुनते रहते हैं। क्या आज तक ऐसा संवाद-पाठ्यक्रम बना, जिसमें छात्राएँ-छात्र मिल कर अध्यापकों से, समाज से, विचारकों, पत्रकारों, बौद्धिकों से अनवरत संवाद कर सकें? संवाद का संयम, शील और मर्यादा क्या हो, लोकतंत्र का नेतृत्व कैसा हो, लोकतंत्र की सभ्यता के मानक मानदंड क्या हों, जन-चिंतन और सरकार-चिंतन के बीच क्या जरूरी है, क्यों जरूरी है, इन मुद्दों का कोई पाठ्यक्रम नहीं। नैतिक-शिक्षा, मूल्यों की शिक्षा, कर्तव्य और अधिकारों की शिक्षा देना केवल पाठ्यक्रमों की आलसी इबारतें हैं।

अध्यापन और शोध-विमुख होकर यह भरोसा तोड़ दिया है? जब शिक्षक-शिक्षक के बीच, शिक्षक-छात्रा-छात्र के बीच ही संवाद नहीं रहा, तो समाज और शिक्षा के बीच संवाद कैसे होगा। जब सार्थक, सभ्य और शिक्षित संवाद का अभाव एक प्रकार से हमारे लोकतंत्र की विडंबना हो गई है तो अभिव्यक्ति की आजादी का अर्थ केवल आरोप-प्रत्यारोप, गाली-गलौज, बयानबाजी और बयान देने एवं मुकरने के क्या होगा?

कभी कोई मंत्री, कोई सेनापति, कोई नेता, कोई अभिनेता, कोई एनजीओ किसी भी विषय पर बयान देता है, तो वह मीडिया या सोशल मीडिया पर वायरल होकर देश भर में ऐसा वातावरण रच देता है जैसे देश किसी आपातकाल में जा रहा हो, पूरा देश सांप्रदायिक हो गया हो, सारी जनता असहिष्णु हो उठी हो। देश की मजदूर-किसान जनता तो उन पर ध्यान देती ही नहीं और न उसे ऐसे ऊल-जलूल बयान सुनने और उन पर प्रतिक्रिया देने की फुर्सत है।

हमारे लोकतंत्र का आदर्श ही हमारी सहिष्णुता है। सवा अरब के देश में सवा सौ पत्रकार, बुद्धिजीवी, नेता, अभिनेता अगर कोई बयान देते हैं तो वह पूरी जनता का बयान कहाँ होता है। इतना जरूर है कि जनता पर उनके बयानों का थोड़ा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। प्रश्न यह है कि क्या हम अपने लोकतंत्र को अफवाहों, बयानों और नकारात्मक प्रचारों की आजादी मान कर उसे अभिव्यक्ति की आजादी मानते हैं या लोकतंत्र को संयम से सभ्यता-संवाद का आदर्श?

शिक्षा से यह सामाजिक सभ्यता संवाद क्यों नहीं पैदा हुआ या हो रहा है? इस पर विश्वविद्यालयों और स्कूली शिक्षा के धुरंधरों को सोचना होगा। जीके चेस्टरटन ने एक बात मार्के की कही थी कि शिक्षा समाज की आत्मा है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में निरंतर यात्रा करती है। हमने शिक्षा को पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक और परीक्षा के पिरामिड में रख दिया है, जहाँ से उसकी आवाज के बजाय उसका मौन ही प्रकट होता है। हम इन तीन माध्यमों से शिक्षा का चम्मचीकरण या चमचाईकरण कर रहे हैं। उदार उदात्त चिंतन के बजाय संकीर्णता और ईर्ष्या, लालच और धन की दौड़ तो रच रहे हैं, मगर इएम फार्स्टर जैसे कथाकार को कहना पड़ा था कि जिस शिक्षा से हम स्पून-फीडिंग कर रहे हैं, वह चम्मच के आकार के सिवा और कुछ नहीं सिखा सकती।

शिक्षा में इस संवादहीनता को पाउले फ्रेरे ने दो किताबों में व्यक्त किया है- एक उत्पीड़ितों का शिक्षाशास्त्र और दूसरा- शिक्षा-मुक्ति का अभ्यास। वह साक्षरता अभियान में पूरे लैटिन अमेरिका में घूमा और उसने विद्यालयों, यहाँ तक कि विश्वविद्यालयों में मौन की संस्कृति (कल्चर ऑफ साइलेंस) देखी। शिक्षा जब अपनी संस्था में सन्नाटे की संस्कृति भोग रही है तो इवान सही तो कहता है- 'स्कूल का अंत कर दो क्योंकि स्कूल दिमाग को जड़ बना रहा है।'

आज हमारे देश के सामने शहरी-सांप्रदायिकता, शहरी-असहिष्णुता, शहरी-धार्मिकता, शहरी-बौद्धिकता और शहरी-राजनीति छा रही है। ऐसे में गाँव भी या छोटे-मोटे कस्बे भी बयानबाजी की फसल उगाने लग जाएँ, तो न तो साहित्य और साहित्यकारों की किताबों से, न स्कूल-विश्वविद्यालयों से और न मीडिया-अखबारी बौद्धिकों के बयानों से अन्न उपजेगा और न देश का पेट भरेगा। अच्छा है कि गाँव, किसान और मजदूर इन बयानों पर ध्यान ही न दें, चाहे मीडिया कितना भी प्रचार करे। जनता कभी सोती नहीं, भूलती भी नहीं और भले बड़े बौद्धिक और शिक्षित समाज से संवाद न करे, मगर वह निरंतर आत्म-संवाद करती है। अपने मौन से भी संवाद करती रहती है और चुनाव के दौरान इसी मौन के इस्तेमाल से शोरगुल भरे संवादों की पोल खोल कर बता देती है कि उसके मौन का भी अर्थ क्या है। वह सरकार बदल देती है, लोक-प्रिय से लोकप्रिय नेता-अभिनेता को भी सड़क पर खड़ा कर देती है और फैसला तब देती है जब उसकी आत्मा की अदालत में उसका मौन गवाह बन जाता है।

अगर शिक्षा अपने वास्तविक अर्थ में सार्थक होती है तो वह हथियारों और हिंसा से क्रांति नहीं करती, वह तो शांति की क्रांति रचती है, सभ्य-समाज के शील, सौजन्य, सद्भाव और सहिष्णुता की क्रांति रचती है, लोकव्यापी संवाद की क्रांति करती है। ऐसी क्रांति का लोकतंत्र रचने के लिए ही तो एएस नील ने अपने समरहिल स्कूल में स्कूल डिमाक्रेसी यानी स्कूल का लोकतंत्र आजमा कर समस्त बच्ची-बच्चों को लोकतांत्रिक ढंग से बिना किसी रंग, वर्ग या जातिगत भेदभाव के स्कूल का प्रबंधन सौंपा था और बचपन से ही लोकतंत्र और सभ्य समाज में संवाद की सभ्यता रचने की कोशिश की थी।

आज हमारे लोकतंत्र में चुनाव के बाद लोकतंत्र केवल नेतातंत्र या बौद्धिक-तंत्र बन कर रह गया है। अंग्रेजी में कहावत है कि जिस लोकतंत्र में जनता, जनता को चाहती है वह लोकतंत्र सर्वाधिक सौभाग्यशाली जनता का लोकतंत्र है। भारत अभी जनता के भी बंटवारे का लोकतंत्र है। यहाँ कोई हिन्दू, कोई ईसाई, कोई मुसलिम है तो कोई आदिवासी, पिछड़ा आदि। सबका समान जनताभाव पैदा ही नहीं हुआ। इसलिए अड़सठ साल बाद भी हमारा लोकतंत्र भेदभाव का लोकतंत्र है, अमीरों के वर्चस्व का लोकतंत्र है, जातियों और धर्मों का लोकतंत्र है। हम आज तक वह विराट धर्मनिरपेक्ष धर्म रच ही नहीं सके, जिससे यह लगता कि यह सवा अरब जनता का जनता के लिए लोकतंत्र है।

अब एक प्रश्न उन शिक्षाविदों से, जो समय-समय पर विचारों के ताने-बाने या तो विश्वविद्यालय परिसरों या

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ की साधारण सभा सम्पन्न

हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ कि राज्य कार्यकारिणी की साधारण सभा एवं प्रदेश कार्यकारिणी राष्ट्रीय विद्या केन्द्र कसुम्पटी जिला शिमला में आयोजित की गई जिसमें मार्गदर्शक के रूप में श्री महेन्द्र कपूर, राष्ट्रीय संगठन मन्त्री, अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ ने सहभाग किया। बैठक दो सत्रों में सम्पन्न हुई। प्रथम सत्र का शुभारम्भ दीप प्रज्वलन एवं माँ सरस्वती की वन्दना से हुआ। विनोद सूद ने सभी का स्वागत कर मंच का परिचय दिया और सभा में मौजूद सभी शिक्षकों को शिक्षक महासंघ के बारे में जानकारी प्रदान की। उसके बाद राज्य के महामन्त्री श्री रजनीश चौधरी ने हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ की वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसमें वर्ष भर में आयोजित गतिविधियों का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया। इसके बाद सभी जिला अध्यक्षों एवं जिला महामंत्रियों ने जिला वार अपनी मांगे रखीं जिनमें 4-9-14 को पूरी तरह लागू करना, रिक्त पड़े पदों को शीघ्र भरना, free text books की समय पर आपूर्ति, कॉन्ट्रैक्ट अध्यापकों को ज्वाइनिंग तिथि से नियमित करना, वाईस प्रिंसिपलों की पोस्ट सृजित करना, टी जी टी की वर्तमान वरिष्ठता सूची जारी करना, पेंशन योजना को 2003 से पहले की तरह लागू करना, पदोन्नति पर ग्रेड पे के लिये 2 वर्ष कि शर्त हटाना, पीजीटी का पदनाम लेक्चरर करना, पीटीआई से डी.पी.ई. की पदोन्नति सूची जारी करना, कॉन्ट्रैक्ट अवधि 3 वर्ष करना आदि प्रमुख थीं। साधारण सभा ने इन सभी माँगों को संगठन के माध्यम से उच्च अधिकारियों और सरकार के समक्ष रखने निर्णय लिया।

दूसरे सत्र में अध्यक्ष पवन मिश्रा ने राज्य कार्यकारिणी को भंग करने की घोषणा की। प्रदेश कार्यकारिणी ने डॉ. सुनील कुमार बनयाल प्रवक्ता, डाईट, शिमला, को चुनाव पर्यवेक्षक नियुक्त किया गया। उन्होंने सभा से अध्यक्ष पद के लिए नाम प्रस्तावित करने को कहा जिस पर नरेन्द्र कपिला, जिला अध्यक्ष सोलन ने रजनीश चौधरी का नाम प्रस्तावित किया जिसका अनुमोदन नरेश कुमार शर्मा, जिला अध्यक्ष हमीरपुर और वीर भगत, जिला अध्यक्ष शिमला ने किया। डॉ. सुनील कुमार ने रजनीश चौधरी को सर्व सम्मति से हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ का नया अध्यक्ष घोषित किया। नवीन प्रदेश अध्यक्ष ने राज्य की शेष कार्यकारिणी को चुनने का अधिकार प्रदान किया। नवनिर्वाचित प्रान्त संगठन मन्त्री पवन मिश्रा ने प्रदेश की गुणात्मक शिक्षा में संगठन की भूमिका पर प्रकाश डाला और कहा, 'वर्तमान में हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ बच्चों की गुणात्मक शिक्षा के लिए छात्र हित, शिक्षा हित में कार्य कर रहा है। इसके लिए मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति देकर प्रोत्साहन देना महासंघ की नई पहल है और भविष्य में इस प्रकार की छात्रवृत्ति योजना प्रदेश के सभी जिलों में चलाने का प्रयत्न करेगा। समापन में राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर ने सभा को सम्बोधित किया। उन्होंने संगठन की रूप रेखा और संचालन के लिए कार्यकारिणी को सुझाव दिए। अपने वक्तव्य में कपूर जी ने वर्तमान शिक्षा और शिक्षा की चुनौतियों का मिलकर सामना करने की नसीहत दी। स्कूलों में अध्यापकों की सक्रिय भूमिका पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने कहा, 'अध्यापकों को अपने स्कूलों में कर्त्तव्य का निर्वाह ईमानदारी से करना चाहिए जिससे बच्चों के माता-पिता में अध्यापकों के प्रति खोया विश्वास जगे और स्कूलों में घटती बच्चों की संख्या को बढ़ाया जा सके। अभिभावक सरकारी स्कूलों में अपने बच्चों को प्रवेश दिलाये। इसके अलावा अध्यापक द्वारा कक्षा में नवीनतम तरीकों जैसे- गतिविधि आधारित शिक्षा का प्रयोग कर बच्चों में सीखने के प्रति रुचि जगाई जा सकती है और परीक्षा परिणामों को बेहतर बनाया जा सकता है।'

जिला शिमला के अध्यक्ष वीर भगत ने साधारण सभा व राज्य कार्यकारिणी की बैठक में मौजूद श्री महेन्द्र कपूर व हिमाचल प्रदेश शिक्षक महासंघ के पदाधिकारियों, स्कूलों से आये अध्यापकों और मीडिया से आये पत्रकारों का धन्यवाद किया।

उच्च राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय संस्थानों में बैठ कर बुनते रहते हैं। क्या आज तक ऐसा संवाद-पाठ्यक्रम बना, जिसमें छात्राएँ-छात्र मिल कर अध्यापकों से, समाज से, विचारकों, पत्रकारों, बौद्धिकों से अनवरत संवाद कर सकें? संवाद का संयम, शील और मर्यादा क्या हो, लोकतंत्र का नेतृत्व कैसा हो, लोकतंत्र की सभ्यता के मानक मानदंड क्या हों, जन-चिंतन और सरकार-चिंतन के बीच क्या जरूरी है, क्यों जरूरी है, इन मुद्दों का कोई पाठ्यक्रम नहीं। नैतिक-शिक्षा, मूल्यों की शिक्षा, कर्तव्य और अधिकारों की शिक्षा देना केवल पाठ्यक्रमों की आलसी इबारतें हैं।

इस किताबी आलस्य से बाहर आकर समाज की चेतना बढ़ाने, समाज में संवाद की प्रतिष्ठा करने, समाज को शिक्षा-संवेदी बनाने का कोई प्रयत्न ही नहीं होता। इसलिए फील्डिंग ने एक बार कहा था कि हमारे तमाम पब्लिक स्कूल दुर्गुण और अनैतिकता फैलाने की नर्सरी बन कर रह गए हैं। यही हाल तो अब विश्वविद्यालयों का हो गया है, जहाँ हत्या, हिंसा, आत्महत्या, यौन-अपराध आदि पाठ्येतर क्रियाओं आदि का अखाड़ा बना दिया है।

एक स्वस्थ, शिक्षित, सभ्य और सहिष्णु समाज लाठियों और बंदूकों के डर से नहीं रचा जा सकता। उसे तो ऐसी शिक्षा रचनी होगी, जो स्वस्थ संवाद रच सके, सभ्य संवाद रच सके, स्वच्छ छवि रच सके। ❑

असमानता की ओर तेज कदम

अभी सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले बहुत-से शिक्षक-शिक्षिकाओं को लग रहा होगा कि यह कानून सिर्फ निजी स्कूल के शिक्षक-शिक्षिकाओं तक सीमित है और इसलिए उन्हें इसका विरोध करने की आवश्यकता नहीं है। अगर वास्तव में ऐसा है तो यह उनका भ्रम ही होगा, क्योंकि इसका अगला शिकार वे ही होंगे। इस आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सिर्फ निजी स्कूलों के शिक्षकों तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि आज नहीं तो कल सरकारी स्कूलों के शिक्षक-शिक्षिकाएँ भी इसकी जद में आएँगे।

❑ **बीरेंद्र सिंह रावत, मनोज चाहिल, फिरोज अहमद**

हाल ही में दिल्ली विधानसभा ने शिक्षा संबंधी तीन विधेयक पारित किए। इन विधेयकों का उद्देश्य दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 (अब से अधिनियम 1973 कहा जाएगा) तथा शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में संशोधन करना है। इन विधेयकों में से एक, विधेयक संख्या 10, दिल्ली विद्यालय शिक्षा अधिनियम, 1973 में संशोधन करने से संबंधित है। इस आलेख में हम विधेयक संख्या 10 संबंधी तथ्यों, संदर्भ तथा इसके संभावित असर का विश्लेषण प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस विधेयक के जरिए बयालीस साल पुराने अधिनियम 1973 के खंड दस के उप-खंड (1) में संशोधन किया जा रहा है। खंड दस के उप-खंड (1) का संशोधित रूप कहता है- ''निजी मान्यता प्राप्त विद्यालय के कर्मचारियों को संदेय वेतन और भत्ते तथा उसके सेवा के निबंधन और शर्तें वे होंगी जो विहित की जाएं।''

अधिनियम 1973 के अनुसार, निजी विद्यालय के कर्मचारियों का वेतन तथा अन्य सभी लाभों सहित भत्ते, सरकारी विद्यालय के कर्मचारियों से कम नहीं होंगे। इतना ही नहीं, अधिनियम 1973 का यह खंड यह भी कहता है कि जिन निजी विद्यालयों के कर्मचारियों को सरकारी विद्यालयों के समकक्ष कर्मचारियों की तुलना में वेतन और अन्य लाभ कम मिल रहे हैं, सरकार उन विद्यालयों की प्रबंध समिति को लिखित रूप में यह कहेगी कि वे अपने कर्मचारियों को समान स्तर का वेतन और अन्य लाभ दें। यदि प्रबंधन सरकार के आदेश का पालन नहीं करता है तो उसके खिलाफ अधिनियम 1973 के खंड 4 के तहत कार्रवाई की जाएगी। इस अधिनियम का खंड 4 स्कूलों को मान्यता देने की शर्तों से संबंधित है। इस खंड में दी गई शर्तों में से एक शर्त यह है कि मान्यता चाहने वाले स्कूलों की वित्तीय क्षमता ऐसी होनी चाहिए कि वे अपने कर्मचारियों को सरकारी स्कूल के कर्मचारियों के बराबर का वेतन और अन्य लाभ दे सकें।

अधिनियम 1973 के खंड 10 (1) में अपने कर्मचारियों को सरकारी स्कूल के कर्मचारियों के बराबर का वेतन और अन्य लाभ

न दे सकने वाले स्कूलों की मान्यता रद्द करने का प्रावधान है। लेकिन अधिनियम 1973 के खंड 10 (1) के संशोधित रूप में यह प्रावधान हटा लिया गया है। स्पष्ट है कि अब अपने कर्मचारियों को वेतन आदि का भुगतान न करने वाले स्कूलों के कर्मचारियों को राज्य से किसी प्रकार का संरक्षण नहीं मिलने वाला। इस संशोधन के जरिए कर्मचारियों को स्कूल-मालिकों के रहमो-करम पर छोड़ दिया गया है। इसका अर्थ है कि राज्य अपनी संवैधानिक और नैतिक जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ कर निजी स्कूल-मालिकों के हक में कर्मचारियों के अधिकारों की बलि दे रहा है।

इस विधेयक में दिए गए 'लक्ष्यों और कारणों का विवरण' में कहा गया है, ''वर्तमान में दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम-1973 में सिर्फ दो दंडात्मक प्रावधान उपलब्ध हैं जो कि विद्यालय की मान्यता रद्द करना तथा विद्यालय के प्रबंधन को सरकारी नियत्रंण में लेना है। ये दोनों अत्यधिक कठोर कदम हैं जो प्रभावी दंडात्मक कार्यवाही को बाधित करते हैं। इसलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि दिल्ली स्कूल शिक्षा अधिनियम 1973 में कुछ और दंडात्मक प्रावधान और सजा देने का प्रावधान शामिल किया जाए, ताकि इसे अधिक प्रभावकारी बनाया जा सके।'' अधिनियम-1973 में पहले से मौजूद दंडात्मक प्रावधानों की तुलना में जो और 'अधिक प्रभावकारी' दंडात्मक प्रावधान जोड़े गए हैं उनमें शिक्षा निदेशक द्वारा लिखित चेतावनी देना तथा आर्थिक दंड लगाना शामिल है। इन प्रावधानों को अधिक प्रभावी बताया जा रहा है!

अधिनियम-1973 के खंड 10 के उप-खंड (1) में किए जा रहे बदलावों को 'शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के अनुरूप' बताया जा रहा है। शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 को बनाने की प्रक्रिया से जुड़े लोगों और राजनीतिक दलों से अपेक्षा है कि वे दिल्ली सरकार के इस दावे की सच्चाई जनता को समझाएं।

अगर शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 के खंड 23 के उप-खंड (3) के साथ अधिनियम-1973 के खंड 10 के उप-खंड (1) में किए जा रहे बदलावों का मिलान करें तो हमें पता चलेगा कि दिल्ली सरकार ने 'शिक्षकों' की जगह 'कर्मचारी' कर उसमें 'मान्यता प्राप्त निजी स्कूलों' जोड़ दिया है। वास्तव में दिल्ली सरकार ने शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 की मंशा को समझ कर फिलहाल उसे सिर्फ निजी स्कूलों के कर्मचारियों पर लागू करने के लिए यह संशोधन पारित किया है। लेकिन स्कूल के कर्मचारियों के पक्ष में उनके वेतन तथा अन्य भत्तों को लेकर जैसी स्पष्टता अधिनियम-1973 के खंड 10 के उप-खंड (1) में है वैसी न तो शिक्षा अधिकार अधिनियम, 2009 में है और न ही दिल्ली सरकार द्वारा पारित विधेयक संख्या 10 में है।

किसी भी अन्य कानून की तरह इस संशोधन को समझने के लिए भी हमें इसे उन अन्य वृहद बदलावों व प्रक्रियाओं के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा जिसके इर्दगिर्द इसे रचा जा रहा है। फिलवक्त हम राजनीतिक समझ की कम-से-कम तीन ऐसी कड़ियाँ पहचान सकते हैं जो इस संशोधन में निहित हैं और इसे दिशा दे रही हैं। भले ही हम यहाँ इन कड़ियों के उदाहरण मुख्यत: राज्य सरकार के संदर्भ में प्रस्तुत करें लेकिन हमारा मानना है कि ये कड़ियाँ दिल्ली सरकार या उसके सत्तारूढ़ दल तक सीमित नहीं हैं और पिछले दो-ढाई दशक से राज्य के चरित्र को निरंतर निर्देशित कर रही हैं।

पहली कड़ी हमें शिक्षामंत्री व मुख्यमंत्री के उन अखबारी बयानों में मिलती है जिनमें उन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की कि उनकी सरकार शिक्षा में निजीकरण के खिलाफ नहीं है। विधेयक पर कुछ निजी स्कूलों के प्रबंधकों के विरोध पर प्रतिक्रिया करते हुए शिक्षामंत्री ने आश्वस्त किया कि सरकार न सिर्फ निजीकरण के विरुद्ध नहीं है बल्कि उसे निजी स्कूलों से कोई शिकायत भी नहीं है। अपने इस बयान को विचित्रता प्रदान करते हुए शिक्षामंत्री ने आगे कहा कि सरकार लोगों को लूटने वाली शिक्षा और शिक्षा को व्यवसाय बनाने के खिलाफ है। इसी तर्ज पर स्वयं मुख्यमंत्री ने कहा कि शिक्षकों का वेतन कम करके वे निजी स्कूलों में वसूली जाने वाली फीस पर अंकुश लगाना चाहते हैं क्योंकि वे नहीं चाहते कि ये स्कूल बंद हों और इस मकसद से ही निजी स्कूलों में शिक्षकों को कुशल कामगारों के न्यूनतम दैनिक भत्ते के समान वेतन दिलाने का कानून लाया जा रहा है। एक तरफ यह दावा करना कि सरकार की मंशा सार्वजनिक शिक्षा को मजबूत करने की है और दूसरी तरफ निजी स्कूलों के प्रबंधन, मालिकों के पक्ष में कानून बनाना कथनी व करनी के बीच में एक कुटिल विरोधाभास दिखाता है।

संदर्भ की दूसरी कड़ी श्रम कानूनों में मजदूरों के हितों के विरुद्ध किए जा रहे बदलावों के रूप में देखी जा सकती है। तीसरी कड़ी उस आग्रह में प्रकट होती है जो उपर्युक्त दोनों कड़ियों को दार्शनिक-मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। यह व्यक्तिवाद का वह सिद्धांत है जिसके अनुसार सामाजिक परिघटना व राजनीतिक समस्या को निजी कमजोरी या खूबी के आधार पर परिभाषित करके विषमता तथा सत्ता के बुनियादी सवालों को दबा दिया जाता है। यदि निजी स्कूलों के शिक्षकों के वेतन को नियंत्रित करने वाला विधेयक लागू हो जाएगा तो इसके क्या असर होंगे यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है।

इस अधिनियम से पूर्व आज तक जहाँ निजी स्कूलों में कम वेतन पर अप्रशिक्षित शिक्षक और शिक्षिकाएँ नौकरी पाते रहे हैं वहीं अब इस अधिनियम के लागू हो जाने के बाद इनमें कम वेतन पर प्रशिक्षित शिक्षकों और शिक्षिकाओं को कानूनी रूप से रखा जा सकेगा। यह अधिनियम अब निजी स्कूलों द्वारा शिक्षकों के शोषण को वैधता प्रदान करेगा।

इस अधिनियम के लागू होने का एक (कु) परिणाम यह होगा कि पहले से ही कुकुरमुत्तों की तरह बढ़ रहे निजी स्कूलों की संख्या में और वृद्धि होगी।

यह भी सोचने की आवश्यकता है कि शिक्षा अधिकार अधिनियम-2009 विद्यालय के लिए कुछ मानदंडों का निर्धारण करता है, जिनमें खेल का मैदान, पुस्तकालय आदि शामिल हैं। वे स्कूल जिनके पास ये सब सुविधाएँ नहीं हैं, वे कैसे इन्हें शामिल कर पाएँगे, जबकि वे पहले से ही संसाधनों की कमी का रोना रोते आए हैं? भाजपा-नीत राजग सरकार के आने से पहले से यह कहा जा रहा था कि देश के विकास के लिए गुजरात मॉडल लागू किया जाएगा। यह गुजरात मॉडल वही है जिसमें शिक्षकों और शिक्षिकाओं को पूरा वेतन नहीं दिया जाता और वे बहुत ही कम वेतन पर अध्यापन-कार्य कर रहे हैं।

जब शिक्षकों को पर्याप्त वेतन ही नहीं मिलेगा तो शिक्षण के पेशे में लोगों की रुचि में कमी आएगी और इसका असर शिक्षण और प्रशिक्षण की संस्थाओं तथा उनकी गुणवत्ता पर भी पड़ेगा। एक तो पहले से ही शिक्षण-प्रशिक्षण संस्थाओं की हालत खस्ता है, ऊपर से शिक्षकों के हकों पर होने वाले हमलों से ये संस्थाएँ और भी बुरी स्थिति में पहुँच जाएँगी।

अंत में, अभी सरकारी स्कूलों में पढ़ाने वाले बहुत-से शिक्षक-शिक्षिकाओं को लग रहा होगा कि यह कानून सिर्फ निजी स्कूल के शिक्षक-शिक्षिकाओं तक सीमित है और इसलिए उन्हें इसका विरोध करने की आवश्यकता नहीं है। अगर वास्तव में ऐसा है तो यह उनका भ्रम ही होगा, क्योंकि इसका अगला शिकार वे ही होंगे। इस आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता कि यह सिर्फ निजी स्कूलों के शिक्षकों तक सीमित नहीं रहेगा, बल्कि आज नहीं तो कल सरकारी स्कूलों के शिक्षक-शिक्षिकाएँ भी इसकी जद में आएँगे। ❑

नई शिक्षा नीति 2015 पर सुझाव सौंपे

शैक्षिक मंथन संस्थान जयपुर द्वारा 'नई शिक्षा नीति 2015' विषय पर आयोजित एक दिवसीय संगोष्ठी का समेकित प्रतिवेदन शिक्षा राज्यमंत्री(स्वतंत्र प्रभार) प्रो. वासुदेव देवनानी को सौंपा गया। इस अवसर पर अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के संगठन मंत्री श्री महेन्द्र कपूर, संगोष्ठी संयोजक डॉ. राजेन्द्र शर्मा, श्री भरत शर्मा एवं शैक्षिक मंथन पत्रिका के उप संपादक श्री विष्णु प्रसाद चतुर्वेदी उपस्थित रहे।

नई शिक्षा नीति 2015 में मुख्य विषय इस प्रकार रहे- पाठ्यक्रम का केन्द्र शिक्षक नहीं होकर हमारा विद्यार्थी होना चाहिए जिसके निर्माण हेतु पाठ्यक्रम निर्माण की बात कर रहे हैं। पाठ्यक्रम खण्ड-खण्ड में शिक्षा की बात करते हैं जबकि शिक्षा में समग्रता या एकाग्रता हो अर्थात शिक्षा का समग्र दृष्टिकोण हो, शिक्षा का आधार भारतीय दर्शन पर हो, स्वावलंबन शिक्षा का आधार बनें, शिक्षा नीति का प्रबंधन शिक्षकों द्वारा हो, शिक्षा स्वायत्त हो तथा शिक्षकों की जवाब-देही सुनिश्चित हो, शिक्षा के वाणिज्यीकरण को रोका जाये, विद्यमान संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग हो, शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो, वैज्ञानिक चिंतन को प्रोत्साहित करने वाली हो, शिक्षा के साथ कौशल विकास को निश्चित रूप से जोड़ा जाये, शिक्षा का अर्थ प्रबंधन सुनिश्चित हो एवं शिक्षा में व्याप्त असमानताओं को दूर करना नितांत आवश्यक है।

हमारी शिक्षा ज्ञान देने वाली, सृजनात्मक, रचनात्मकता देने वाली हो। वहीं हमारी शिक्षा नवाचार को प्रोत्साहित करे। शिक्षा का दृष्टिकोण भारतीय होना चाहिए। शिक्षा का उद्देश स्वावलम्बी बनाने वाली शिक्षा होनी चाहिए। विद्यार्थी में अपने अन्तर्निहित गुणों को बाहर लाने का प्रयत्न करना चाहिए। शिक्षा चरित्र निर्माण एवं मानव निर्माण की होनी चाहिए धन कमाना दूसरी प्राथमिकता होनी चाहिए। शिक्षा में कौशल विकास का होना नितान्त आवश्यक है जिससे विद्यार्थी अपना जीवन चला सकें। वहीं शिक्षा व्यवहार पर आधारित होना चाहिए केवल सिद्धान्तों पर आधारित नहीं। शिक्षा में राजस्थान का भी प्रतिनिधत्व होना चाहिए।

शिक्षा का प्रबन्धन नौकरशाहों के हाथ में न होकर शिक्षा से जुड़े हुए व्यक्तियों के हाथ में होना चाहिए। तभी देश में शिक्षा का विकास और भला संभव है। स्वतंत्र एवं स्वायत्त निकाय बनें। शिक्षा नेताओं और नौकरशाहों की दासी नहीं होनी चाहिए वह राष्ट्र और व्यक्ति निर्माण की हो। शिक्षा नीति निर्धारण में शिक्षकों की सहमति होना बहुत जरूरी है। जो भी अच्छी शिक्षा नीति बने उसे धरातल पर उतारकर पूर्ण रूप से उसका क्रियान्वयन होना चाहिए। भारत में राजभाषा के साथ-साथ प्रान्तीय भाषाओं का विकास होना चाहिए। जहाँ कम्प्यूटर की भाषा संस्कृत है और उसे अधिक प्रभावी ढंग से उपयोगी बनाना चाहिए।

पारम्परिक विषयों को आधुनिक ढंग से प्रयोग कर उपयोगी बनाना जा सकता है। जो भारतीय ज्ञान संचित है उसे आधुनिक तकनीक के माध्यम से सामने लाने का प्रयास किया जाय जिससे वह सभी के लिए उपयोगी हो सके। भारतीय शिक्षा का अन्तर्राष्ट्रीयकरण नितान्त आवश्यक है। जिससे भारतीयता की पहचान संपूर्ण विश्व में हो सके। मौलिक शोध को प्रोत्साहन मिले, अन्तर्विषयक दृष्टिकोण हो, शिक्षकों हेतु निरन्तर शैक्षिक एवं शोध कार्यक्रमों का संचालन तथा उनका मूल्यांकन हो एवं अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सेवा संवर्ग का गठन हो।

भारतीय शिक्षा आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बनाने वाली होनी चाहिए। हमारी शिक्षा पद्धति का बल रोजगार पर होना चाहिए नौकरी का नहीं। राष्ट्रभाव को प्रेरित करने वाली सांस्कृतिक परम्परा से युक्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्वावलम्बन एवं राष्ट्र गौरव, कौशल विकास-केवल जुगाड़ संस्कृति का विकास नहीं, हुनर को आधुनिक तकनीकी के साथ समेकित करना है। के.जी. से पी.जी तक की शिक्षा राष्ट्रभाव से ओत प्रोत हो । ग्रामीण सेवा का केडर अलग से बने और शिक्षक पूरी सेवा ग्रामीण क्षेत्रों में ही दें। उच्च शिक्षा में नैतिकता का समावेश होना बहुत जरूरी है। वहीं महिलाओं की सहभागिता बहुत आवश्यक है। हमारी शिक्षा-नीति भविष्य का मार्गदर्शन करके नये ज्ञान का सर्जन करने वाली हो।

मस्तक धूल चढ़ाने उनको झुक जाते आकाश

आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को संबोधित करते हुये सुभाष बाबू ने कहा कि तरक्की में मत फँसना अपनी विजय के पश्चात भारत के सात लाख गाँवों में जाकर विद्यालय खोल लेना, जीवन यापन हो जायेगा। यह काम ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, बिना रक्त क्रांति के आजादी नहीं मिलेगी 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' इसे हमेशा याद रखना। 17 अगस्त 1945 को बैंकॉक हवाई अड्डे के लिये एक पोटली लेकर अज्ञात यात्रा के लिये रवाना हुये। 22 अगस्त 1945 को टोकियो रेडियो ने प्रसारण किया कि वायुयान दुर्घटना में सुभाष बाबू नहीं रहे किन्तु यह आज भी विवाद का विषय है।

❑ **साकेन्द्र प्रताप वर्मा**

जयंती विशेष

बहाव के साथ तो लाशें भी चली जाती हैं, नदी को पार करना और धारा के विपरीत जाना ही पौरुष का काम होता है, इसी महान उद्देश्य की पूर्ति के श्रेष्ठ साधक नेताजी सुभाष चन्द्र बोस का जन्म उड़ीसा प्रान्त के कटक नामक स्थान पर 23 जनवरी 1897 को हुआ था। इनके पिता श्री जानकी नाथ बोस इन को अंग्रेजी स्कूल की शिक्षा ही दिलाना चाहते थे लेकिन 15 वर्ष की आयु के बाद सुभाष बाबू भारतीय स्कूल में ही शिक्षा प्राप्त करने के लिये चले गये। 1913 में मैट्रिक, 1915 में इण्टर तथा 1919 में सम्मान सहित बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण करके सुभाष बाबू ने अपनी बुद्धिमता का परिचय दिया। विद्यार्थी जीवन से ही उनके मन के अंदर देशभक्ति का भाव हिलोरें ले रहा था लेकिन पिताजी के एक ही इच्छा बार-बार सताती थी कि किसी भी तरह मेरा सुभाष आई.सी.एस. हो जाय। एक दिन वार्तालाप में सुभाष बाबू से इनके पिता ने अपनी इच्छा व्यक्त की किन्तु सुभाष बाबू उसे टालते रहे, जिस पर क्रोधित होकर पिता जी ने कह दिया कि आई.सी.एस. बनना तुम्हारे दम के बाहर है। चुनौती स्वीकार करके 9 सितम्बर 1919को इंग्लैण्ड गये, एम.ए. में प्रवेश लेकर आई.सी.एस. की तैयारी प्ररम्भ कर दी, और मात्र 8 मास की तैयारी के बाद उनका नाम आई.सी. एस. में आ गया, जहाँ केम्ब्रिज वि.वि. में उनका चौथा स्थान आया।

16 जुलाई 1921 को सुभाष बाबू आई.सी.एस. बनकर भारत वापस आ गये लेकिन अंग्रेजी हुकूमत की नौकरी उन्हें स्वीकार नहीं थी। इस कारण प्रमाण पत्र फाड़ दिया, आई.सी.एस. से त्याग पत्र भेज दिया। गांधी जी से मिलकर अपनी नई राह तय कर ली । भले ही अहिंसा का रास्ता उन्हें पसंद नहीं था। 10 दिसम्बर 1921 को स्वदेशी आंदोलन में जेल गये, जेल से रिहा होने पर विदेशी वस्तु बहिष्कार आंदोलन में आगे आये लेकिन क्रांतिकारी षड़यन्त्र के आरोप में पुनः बर्मा जेल भेज दिये गये। 1927 में बीमारी की हालात में अंग्रेज सरकार ने डरकर जेल से छोड़ दिया । जेल से रिहा होकर बंगाल कांग्रेस के अध्यक्ष बने। 1938 में कांग्रेस के अ.भारतीय अध्यक्ष बन गये किन्तु गांधी जी की राह पसन्द नहीं थी, विचार भिन्नता हो गयी। 1939 में पुनः कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव लड़े, गांधी जी के समर्थित प्रत्याशी डा. पट्टाभि सीतारमैय्या को हराया लेकिन दुःखी मन से उन्होंने त्याग पत्र दे दिया। अलग फारवर्ड ब्लाक का गठन किया। 1940 में वीर सावरकर से भेंट करके उनके सामने सशस्त्र संघर्ष का प्रारूप रखा। सावरकर ने उन्हें यूरोप जाकर द्वितीय विश्वयुद्ध के युद्ध बन्दी सैनिकों से मिलने का सुझाव दिया साथ ही अंग्रेज सरकार के विरोधी देशों से मिलने का सुझाव भी वीर सावरकर ने उन्हें दिया।

1940 में फिर से गिरफ्तार हो गये, जेल में उन्होंने भूख हड़ताल कर दी, जिसके फलस्वरूप मरने के डर से सरकार ने फिर रिहा कर दिया। सुभाष बाबू मौलवी के वेश में बर्लिन पहुंच गये और अपने अभियान में लग गये । 9 माह बाद उन्होंने जर्मनी रेडियो से विश्व को संबोधित किया। यूरोप और अफ्रीका के भारतवंशी युद्ध बंदी सैनिकों का दल बनाया आजाद हिन्द फौज 21 अक्टूबर 1943 को आजाद हिन्द सरकार भी उन्होंने बनायी जिसे अंग्रेज विरोधी देशों जापान, जर्मनी, बर्मा, फिलीपीन्स, आयरिश, मंचूरिया व इटली ने मान्यता प्रदान कर दी। 1944 से जापानी व भारतीय सैनिकों ने बर्मा के जंगल के रास्ते भारत आने का अभियान प्रारम्भ किया। आजाद हिन्द फौज के सिपाहियों को संबोधित करते हुये सुभाष बाबू ने कहा कि तरक्की में मत फँसना अपनी विजय के पश्चात भारत के सात लाख गाँवों में जाकर विद्यालय खोल लेना, जीवन यापन हो जायेगा। यह काम ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, बिना रक्त क्रांति के आजादी नहीं मिलेगी 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा' इसे हमेशा याद रखना। 17 अगस्त 1945 को बैंकॉक हवाई अड्डे के लिये एक पोटली लेकर अज्ञात यात्रा के लिये रवाना हुये। 22 अगस्त

1945 को टोकियो रेडियो ने प्रसारण किया कि वायुयान दुर्घटना में सुभाष बाबू नही रहे किन्तु यह आज भी विवाद का विषय है।

नेताजी की दुर्घटना के सामाचार के पश्चात आजाद हिन्द फौज के हजारों सैनिक बन्दी बनाये गये, नेताजी सहित सभी पर मुकदमा चलाया गया। भारत के अनेक राष्ट्रभक्त वकील पैरवी में लग गये किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत राजद्रोह के मुकदमें में फांसी दिलवाने का प्रयास किया गया। जनता ने अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह कर दिया। कलकत्ता में 21 नवम्बर 1945 को आजाद हिन्द दिवस मनाने का निर्णय हुआ, सरकार डर गयी। कलकत्ता में छात्रों का विशाल जुलूस निकला जिस पर पुलिस ने गोली चला दी जिससे एक शहीद हुआ और 60 छात्र घायल हुये। इस अत्याचार के खिलाफ सभी माताऐं- बहनें कलकत्ता की सड़कों पर आ गयी। 15 बार एक दिन में गोली चली, 13 नागरिक मारे गये , पचास सेना की गाड़ियाँ फूँक दी गयी सेना के तीनों अंगों में प्रतिशोध हो गया। 17 हजार वायु सैनिक विद्रोह में खड़े हो गये। 11 फरवरी 1946 को कलकत्ता में फौजी गाड़ियाँ लूटी गयी या जला दी गयीं। 19 फरवरी 1946 को मुंबई में नौसेना के सैनिकों ने यूनियन जैक उतार दिया आजाद हिन्द फौज का झण्डा फहराया गया। लगभग 700 अंग्रेज सैनिक मुम्बई में मारे गये।

सैनिक विद्रोह से अंग्रेज डर गये। ये वही सैनिक थे जो या तो वीरसावरकर की प्रेरणा से सेना में गये थे या फिर आजाद हिन्द फौज के सैनिक थे। आज सुभाष बाबू के जीवन से प्रेरणा लेने की आवश्यकता है जिन्होंने अपनी जवानी का एक-एक पल इस मातृभूमि के लिये अर्पित कर दिया। चाहते तो वे भी आई.सी.एस. की नौकरी करके जीवन का आनन्द उठा सकते थे लेकिन कष्ट उठाकर वे बन गये हम सभी के प्रेरणास्रोत और इतिहास की अमूल्य निधि।

मिट जाते जो मातृभूमि पर बनते वे इतिहास हैं।
मस्तक धूल चढ़ाने उनको झुक जाते आकाश है।।❑

(स्वतंत्र लेखक एवं स्तम्भकार)

एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए

❑ देवकृष्ण व्यास

एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए, रुको अभी लिखो नहीं
अभी रुको नहीं लिखो इतिहास के लिए , एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए।।

स्याही से नहीं लिखो, यह रक्त से लिखाएगा
झूठ क्या है सत्य क्या है, वक्त ही बताएगा ।।
ताम्र पत्र जो गढ़े, उनको दिखाईये।
झूठ झूठ जो लिखा, उसको मिटाईये।।
भूत और भविष्य के, विश्वास के लिए।
एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए।।1।।

इसी पृष्ठ को पढ़ेगी, कल की पीढ़ियाँ।
स्वाभिमान को लिए, चढ़ेंगी सीढ़ियाँ।।
प्रश्न है अनेक मगर, एक ही जवाब है।
रुके नहीं, झुके नहीं, मन में इन्कलाब है।।
देश के चरित्र के विकास के लिए।
एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए।।2।।

एक नाम क्यों यहाँ, गुमनाम हो गया।
खास-खास खास है, वो आम हो गया।।
इतिहास अगर इनके लिए, मौन रहेगा।
तो इनकी कहानी, बताओ कौन कहेगा।।
एक दीप दो जला, प्रकाश के लिए ।
एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए।।3।।

जिसने दिया है हमें, जयहिन्द का नारा ।
खतरे में लग रहा है, आज हिन्द हमारा।।
कर रहा है कौन घाव, माँ के भाल पर ।
कट ना जाए भाल, ढाल रखना संभालकर ।।
दुश्मनों के वंश के, विनाश के लिए ।
एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए ।।4।।

यह भी तो पता नहीं, वह जिन्दा है कि मर गया।
जिन्दगी से खेलकर, वो एक काम कर गया।।
आजाद था,आजाद है, आजाद रहेगा ।
वो याद था, वो याद है, वो याद रहेगा।।
एक तो कफन दीजिए, उस लाश के लिए ।
एक पृष्ठ छोड़ दो सुभाष के लिए ।।5।।

❑❑❑

(मालवा प्रान्त संगठन मंत्री, मध्यप्रदेश शिक्षक संघ)

नई शिक्षा नीति-2015

''शैक्षिक मंथन संस्थान द्वारा मानव संसाधन विकास मंत्री को भेजे गये सुझाव''

नई शिक्षा नीति में सम्मिलित किये जाने हेतु महत्त्वपूर्ण बिन्दु-

सभी स्तरों पर सामान्य बिन्दु-

1. **समग्र दृष्टिकोण** -शिक्षा नीति समग्र हो, प्राथमिक, माध्यमिक व विश्वविद्यालय के लिये अलग-अलग शिक्षा नीति बनाने के स्थान पर समग्र शिक्षा जगत् के लिये समग्र शिक्षा नीति तैयार किये जाने की आवश्यकता है, तीनों स्तर सह सम्बन्धित हैं। जिसमें विद्यार्थी का व्यक्तित्व अन्त: प्रवाहित हो, उल्लेखनीय प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा एक दूसरे से अन्तर्संबंधित हैं अत: समग्र नीति बनाना समयानुकूल होगा।
2. **शिक्षा नीति विद्यार्थी केन्द्रित** - शिक्षा जगत् का केन्द्रीय बिन्दु विद्यार्थी है। शिक्षा नीति विषय केन्द्रित एवं शिक्षक केन्द्रित होने के स्थान पर विद्यार्थी केन्द्रित होनी चाहिये, जिसमें विद्यार्थी की प्रतिभा, उसके मनोविज्ञान व अन्तर्निहित विशिष्टताओं को पहचानने की समुचित व्यवस्था हो, साथ ही उसकी विशिष्टताओं के अनुरूप ही विषयाध्यापन एवं कौशल प्रशिक्षण का प्रावधान भी शिक्षा में समाविष्ट हो। इसके लिये विद्यार्थी को क्षेत्रीय, सामाजिक व पारिवारिक पर्यावरण को ध्यान में रखकर सुधारात्मक व विकासात्मक शिक्षण प्रदान करना चाहिये।
3. **शिक्षा का आधार -**

   (1) शिक्षा भारतीय दर्शन पर आधारित हो। शिक्षा आत्म-गौरव व राष्ट्र गौरव का भाव उत्पन्न करे, शिक्षा का उद्देश्य चरित्र निर्माण हो, यह भौतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उन्नयन का माध्यम होनी चाहिये। शिक्षा नीति की जड़ें यहाँ की संस्कृति में हों व इस प्रकार के पाठ्यक्रम का उत्तम पद्धति से निर्माण होना चाहिये व उसके अध्यापन की समुचित व्यवस्था हो। वर्तमान में शिक्षा की औपचारिक पद्धति और देश की समृद्ध और विविध सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच एक खाई है जिसे पाटा जाना आवश्यक है। परिवर्तनपरक तकनीक और सतत चली आ रही देश की सांस्कृतिक परम्परा में एक सुन्दर समन्वय की आवश्यकता है और यह शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है।

   (2) स्वावलंबन शिक्षा का आधार बने- शिक्षा नीति में इस प्रकार के पाठ्यक्रम निर्माण को सम्मिलित किया जावे जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप विद्यार्थियों को स्वावलंबन प्रदान करें, जिससे विद्यार्थी के निजी कौशल व आत्मविश्वास का विकास हो, वह अपना भौतिक व आध्यात्मिक विकास स्वयं करने में सक्षम हो, अपने जीवन का उचित मार्ग चुने व राष्ट्र विकास में योगदान करे।
4. **शिक्षा नीति का प्रबंधन शिक्षकों द्वारा** - शिक्षा नीति की क्रियान्वयन प्रक्रिया, प्रबंधन, तथा शिक्षा व्यवस्था का प्रशासन शिक्षाविदों द्वारा ही होना चाहिये। शिक्षकों को व्यवस्था में निहित न्यूनताओं का ज्ञान होता है, शिक्षा के विषय में उनकी अच्छी समझ होती है अत: वे शिक्षक स्वाभाविक सुधार करने में सक्षम हो सकते हैं। इसके लिये समुचित पद्धति अपनाकर प्रशासक के रूप में किसी शिक्षाविद् का चुनाव भी हो सकता है। स्वतंत्र नियामक आयोग गठित हो जिसमें शिक्षाविदों की नियुक्ति हो, वे भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप नीति क्रियान्वयन व प्रबंधन करें।
5. **शिक्षा स्वायत्त हो तथा शिक्षकों की जवाबदेही सुनिश्चित हो** - शिक्षा नीति में शिक्षा के स्वायत्तीकरण का प्रावधान हो जिससे की जा रही शिक्षा व्यवस्था में अनावश्यक बाहरी हस्तक्षेप न हों, शिक्षाविद् शिक्षा व्यवस्था में सुधार एवं उत्कृष्ट शिक्षा हेतु स्वयं नियम निर्माण कर सकें तथा उनके पालन की निगरानी भी स्वयं रख सकें।

   स्वायत्तता के साथ शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों की जवाबदेही सुनिश्चित की जानी चाहिये। जिसमें कोई उत्तम पद्धति अपनायी जा सकती है जो विद्यार्थी के सर्वाङ्गीण विकास के मापन पर आधारित हो। इसके आधार पर उत्कृष्ट कार्यपरिणाम वाले शिक्षकों को पदोन्नत एवं पुरस्कृत करने की व्यवस्था हो।
6. **शिक्षा के वाणिज्यीकरण को रोका जाये** - शिक्षा प्रदान करना अधिकतम लाभ कमाने की अवधारणा पर आधारित नहीं होना चाहिये। ऐसी संस्थाओं पर प्रबल नियंत्रण आवश्यक है जो धन कमानें हेतु छात्रों से अत्यधिक शुल्क वसूल करती हैं, ऐसे धार्मिक व नैतिक गुरुओं, समाजसेवियों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं को प्रेरित किया जाना चाहिये जो त्याग की भावना पर आधारित हों।
7. **विद्यमान संसाधनों का अनुकूलतम उपयोग-** सर्वदा केवल यही माँग नहीं होनी चाहिये कि हमें शिक्षा व्यवस्था हेतु और अधिक संसाधन चाहिये, बल्कि पहले उपलब्ध संसाधनों का अधिकतम एवं अनुकूलतम उपयोग भी ध्यान में रखना चाहिये। इसमें पुराने भवन का सुरक्षा के साथ अनुकूल उपयोग हो सकता है, शिक्षकों की अतिरिक्त योग्यताओं का महाविद्यालय प्रबंधन एवं शिक्षण में उपयोग किया

जाना चाहिये। क्षेत्रीय आधार पर भी विशिष्टताओं के अनुरूप साधनों का सर्वोत्तम प्रयोग हो।

8. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा** – शिक्षा विद्यार्थी की मातृभाषा में दिये जाने पर अधिक बोधपूर्ण एवं स्थिर होता है, उसका व्यावहारिक प्रयोग भी उतना ही अच्छा होता है, अतः गंभीर बातों व कौशल को मातृभाषा में ही समझाना चाहिये इससे बालक में पूर्णता आती है।
9. **वैज्ञानिक चिंतन को प्रोत्साहन** – शिक्षा में तार्किक व तथ्यपरक विषयवस्तु का समावेश कर वैज्ञानिक चिंतन व दृष्टि को प्रोत्साहित करना चाहिये, इसके लिये हमारे प्राचीन उत्तम ज्ञान एवं विज्ञान को तार्किक ढंग से व्याख्यायित करते हुये विद्यार्थियों को अपने भारतीय विज्ञान के प्रति उन्मुख बनाना चाहिये।
10. **शिक्षा के साथ कौशल विकास को जोड़ा जावे**– प्रारम्भिक शिक्षा के साथ ही उच्च प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर पर अपने पारिवारिक हुनर का ज्ञान व समझ विद्यार्थियों में विकसित की जानी चाहिये। साथ ही माध्यमिक स्तर पर क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुरूप कौशल शिक्षा प्रायोगिक तौर पर दी जानी चाहिये। तदनन्तर महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में उचित रोजगार के साथ मेल खाती सीटों (विद्यार्थी स्थानों) के अनुरूप प्रवेश होने चाहिये। उच्चस्तर पर क्षेत्रीय परिस्थिति के अनुरूप विद्यार्थी में जो कौशल विकसित हुआ है उसके अनुसार कुछ घंटे कमाने (रोजगार) की भी स्वतंत्रता नियमित अध्ययन के साथ दी जानी चाहिये।
11. **शिक्षा का अर्थ प्रबंधन** – शिक्षा नीति इस प्रकार की हो जिसमें मानव जीवन के उद्देश्यों के अनुसार विद्यार्थी अपना सम्पूर्ण प्रबंधन करना सीखें। इसमें बदलते हुये युग, भारतीयता, जीवनमूल्य, आर्थिक विकास सभी का औचित्यपूर्ण एवं सार्थक प्रबंधन होना चाहिये।
12. **शिक्षा में व्याप्त असमानताओं को दूर करना**– शिक्षा के सभी स्तरों पर महिला एवं पुरुषों का लिंगानुपात उपयुक्त होना चाहिये इसके लिये बालिकाओं के अध्ययन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। गिरिजन–वनवासी महिलाओं के लिये उचित छात्रावासों की व्यवस्था होनी चाहिये। इसी प्रकार शहरी क्षेत्र एवं ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा में व्याप्त असमानताओं को ग्रामीण शिक्षा सुविधाओं में विस्तार करके दूर किया जावे।

प्राथमिक शिक्षा हेतु महत्त्वपूर्ण बिन्दु

1. **विद्यालय बालक के घर से निकटतम**– प्राथमिक विद्यालय की स्थापना पर इस बात का ध्यान देना चाहिये कि बालक को शिक्षा घर से निकटतम (अत्यन्त समीप) स्थान पर प्राप्त हो। इसके लिये जनसंख्या के अनुसार अधिकाधिक विद्यालयों की स्थापना के लिये प्रयत्न होना चाहिये।
2. **पाठ्यक्रम भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत**– प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम भारतीय संस्कृति से प्रेरित होना चाहिये जिसमें उत्तम संस्कार प्रदान किये जाने की व्यवस्था हो, महापुरुषों की जीवनियों का अध्यापन हो। कहानी एवं लघु कथाओं के आधार पर नीति की शिक्षा का प्रावधान हो। वर्णमाला–बारहखड़ी– पहाड़े आदि भारतीय नामों, महापुरुषों के नामों से सम्बन्धित किये जावें। बालक में उत्तम गुणों का आविर्भाव करने एवं विकास करने पर बल दिया जावे। राष्ट्र प्रेम उत्पन्न करना पाठ्यक्रम का मूल उद्देश्य होना चाहिये।
3. **सरल एवं खेल-खेल में शिक्षा**– प्राथमिक शिक्षा में बालक को अत्यन्त सरल रूप में मनोरंजन एवं खेल विधा द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था हो। गणित की कठिनता को खेलपद्धति से दूर किया जा सकता है। शिक्षा का पर्यावरण ऐसी व्यवस्था से चले जिससे छोटे बालक में अध्ययन के प्रति रुचि का विकास होता रहे, वह शिक्षा से डरे नहीं बल्कि प्रति दिन विद्यालय आने के लिये उल्लासित रहे।
4. **शिक्षा का माध्यम मातृभाषा**– इस स्तर पर शिक्षा का माध्यम पूर्णतः मातृभाषा हो जिसमें बालक का अधिगम सरल बने, साथ ही उसकी अध्ययन में भी रुचि विकसित हो सकेगी।
5. **बालक की आन्तरिक प्रतिभा को पहचानना**– प्राथमिक स्तर पर ही बालक की प्रतिभा को पहचानने की मनोवैज्ञानिक व्यवस्था शिक्षा नीति में होनी चाहिये, जिससे विद्यार्थी की विशिष्टताओं का विकास एवं कमियों का परिष्कार संभव हो सके।

माध्यमिक शिक्षा के विषय में महत्त्वपूर्ण बिन्दु–

1. **कौशल विकास का विषय आवश्यक**– 9वीं–10वीं कक्षाओं से ही कौशल विकास का विषय आवश्यक रूप से सम्मिलित कर लेना चाहिये। प्रारम्भ में विद्यार्थी को उसके पारिवारिक हुनर का प्रायोगिक ज्ञान दिया जावे। बाद में क्रमशः उसकी रुचि, क्षेत्रीय आवश्यकताओं एवं विशिष्टताओं के आधार पर छोटे-छोटे कौशल को प्रायोगिक रूप से पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया जाना चाहिये। इसके लिये उचित क्षेत्रीय भ्रमण की एवं प्रत्यक्षीकरण की भी व्यवस्था हो। प्रतिदिन कालांश के हिसाब से विद्यार्थी को कौशल विकास हेतु किसी औद्योगिक स्थल पर जाने व सीखने की भी व्यवस्था हो। महाविद्यालय में बढ़ती भीड़ को इसी स्तर पर रोका जाना चाहिये।
2. **विषय चयन की स्वतन्त्रता एवं समग्रता**– इस स्तर पर 11वीं, 12वीं कक्षाओं में बालक को अपनी रुचि के अनुसार विषय चयन की स्वतंत्रता हो साथ ही एक विषय को दूसरे के साथ जोड़कर समग्रता के साथ अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था हो। इसमें विज्ञान के विद्यार्थी को कला के विषयों एवं वाणिज्य के विषयों तथा इसी प्रकार कला एवं वाणिज्य के विद्यार्थियों

को विज्ञान के विषय चयन की भी स्वतंत्रता हो।

3. **व्यक्तित्व निर्माण, भारतीयता एवं राष्ट्रप्रेम-** पाठ्यक्रम में विज्ञान विषय बालक में वैज्ञानिक दृष्टि विकसित करें साथ ही हमारी परम्पराओं, रीति-रिवाज, उत्सवों, मेलों यहाँ के खान-पान, वेश-भूषा, रहन-सहन यहाँ की नदियाँ, पर्वत, पहाड़, तीर्थ इत्यादि में रुचि विकसित करने वाला पाठ्यक्रम तैयार हो। भारतीय शास्त्रों तथा संस्कृत भाषा में अन्तर्निहित ज्ञान-विज्ञान से परिचय एवं रुचि के विकास की व्यवस्था हो। देश रक्षा के लिये प्राण न्योछावर करने वाले राष्ट्रभक्तों, महापुरुषों की जीवनियाँ पाठ्यक्रम का अंग बनकर राष्ट्रप्रेम विकसित करें। लोक संस्कृति के प्रति अनुराग उत्पन्न करने की व्यवस्था हो।

4. **योग शिक्षा एवं श्रम की महत्ता-** स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का विकास होता है, इसी को दृष्टिगत रखते हुए योग एवं स्वास्थ्य शिक्षा का समावेश पाठ्यक्रम में किया जाय। इसी प्रकार पाठ्यक्रम में श्रम की महत्ता को समाज सेवा के साथ जोड़कर उचित रूप से लागू करने की व्यवस्था हो। प्रतिदिन विद्यार्थी को विद्यालय के निकट ग्राम में ले जाकर श्रम-दान करने एवं उसके उचित मूल्यांकन की व्यवस्था हो। वैदिक योग, नाड़ी शुद्धि, आसन, प्राणायाम आदि योगङ्गों का व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जावे।

उच्च शिक्षा के लिये महत्त्वपूर्ण बिन्दु-

1. **उच्च शिक्षा में प्रवेश के स्थान एवं रोजगार में संतुलन-** उच्च शिक्षा में 12वीं कक्षा के बाद उन्हीं विद्यार्थियों को प्रवेश देना चाहिये जो उच्च शिक्षा में रुचि रखते हों और इसके लिये योग्य हों। इसमें अनावश्यक भीड़ को समाप्त करना चाहिये एवं सीटों व रोजगार का संतुलन स्थापित करना चाहिये।

2. **कौशल विकास एवं आजीविका की चिंता-** उच्च शिक्षा में प्रचलित पाठ्यक्रमों का आजीविका एवं उद्योग से सम्बन्ध नहीं होने की वजह से उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवक-नवयुवतियों में लगातार बेरोजगारी बढ़ रही है। उच्च शिक्षा में स्थानीय भौगोलिक परिस्थितियों, विशिष्टताओं के अनुसार व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये जाने चाहिये ताकि भविष्य में उनकी आजीविका सुनिश्चित हो सके।

3. **नैतिकता, सदाचरण, आध्यात्मिकता, चरित्र निर्माण, भारतीयता व राष्ट्रप्रेम उत्पन्न करने वाली शिक्षा-** उच्च शिक्षा में विद्यार्थी के चरित्र निर्माण, उसके उत्तम आचरण व नैतिक मूल्यों के विकास के साथ भारतीय मूल्य एवं राष्ट्रप्रेम को बढ़ावा देने वाली शिक्षा व्यवस्था आवश्यक है। इसके लिये विद्यार्थी के आचरण का सतत् निरीक्षण एवं उत्तम व्यक्तित्व व चरित्र के लिये प्रोत्साहन तथा न्यूनता की स्थिति में सुधारात्मक उपाय अपनाया जाना आवश्यक है।

4. **मौलिक शोध को प्रोत्साहन -** उच्च शिक्षा का अर्थ कुछ नवीन ज्ञान-विज्ञान की खोज है। शोध-कार्यक्रम ऐसे हों जिनसे कोई उपलब्धि हो और वह समाज के विकास में काम आये। शोधोपाधि (पीएच.डी.) हेतु शोध के योग्य विद्यार्थियों का ही पंजीयन हो व उन्हें शोध के लिये अत्याधुनिक समुचित सुविधायें प्रदान की जावें। मानविकी विषयों में शोध के शीर्षकों की उत्तम जाँच हो तथा पुनरावृत्ति एवं पिष्टपेषण को रोका जावे। शोधोपरान्त निष्कर्ष समाज के योग्य होने पर उसका एक वैधानिक प्रपत्र तैयार किया जावे जो क्रियान्वयन विभाग को भेजा जावे।

5. **अन्तर्विषयक दृष्टिकोण -** उच्च शिक्षा में ज्ञान की अखण्डता की अवधारणा पूर्ण होनी चाहिये। प्रत्येक विषय एक-दूसरे विषय से अन्तर्सम्बन्धित होता है उसे उसी प्रकार अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था विकसित की जानी चाहिये। इसके लिये कला-वाणिज्य-विज्ञान विषयों को समग्रता के साथ अपनाकर पाठ्यक्रम निर्माण की आवश्यकता है।

6. **शिक्षकों हेतु निरन्तर शैक्षिक एवं शोध कार्यक्रमों का संचालन तथा उनका मूल्यांकन-** उच्च शिक्षा में शिक्षकों को निरन्तर नवीन ज्ञान से सम्पर्क में लाने हेतु कार्यक्रमों का संचालन होना चाहिये। उनमें शोध-दक्षता विकसित करने हेतु कार्यक्रमों का निर्माण हो, तदनन्तर शिक्षकों का सतत् मूल्यांकन हो।

7. **अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सेवा संवर्ग का गठन-** उच्च शिक्षा की उपयुक्त नीति और क्रियान्वयन किसी देश के विकास के लिये अत्यावश्यक है। इसके लिये अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सेवा संवर्ग का गठन हो (I.H.E.S.) जिसके पदों पर योग्यतम पात्र उम्मीदवारों की नियुक्ति हो।

शिक्षा प्रशासन हेतु महत्त्वपूर्ण बिन्दु -

1. **ग्रामीण सेवा के लिये अलग कैडर एवं उचित सुविधायें-** शिक्षा में ग्रामीण सेवा हेतु अलग कैडर होना चाहिये व वहाँ पर नियुक्ति भी निकटस्थ शिक्षक को ही मिले एवं उन्हें रहने व निर्वाह की उचित सुविधायें मिलनी चाहिये।

2. **शिक्षा के कैलेण्डर को उपयोगी बनाना-** शिक्षा व्यवस्था में सभी स्तरों पर शैक्षिक कैलेण्डर को छात्रों के लिये समुचित उपयोगितापूर्ण बनाना चाहिये। ग्रीष्मावकाश व अन्य अवकाशों का अध्ययन की गुणवत्ता एवं कौशल विकास में प्रयोग हो।

3. **शिक्षा नीति का समयबद्ध एवं समुचित क्रियान्वयन -** नीति बनना एवं उसका सही एवं समयबद्ध क्रियान्वयन होना अत्यावश्यक है अतः नीति का समुचित परीक्षण होने के पश्चात् उसके लागू करने में क्या बाधायें है तथा उनको किस प्रकार दूर किया जावे एवं क्रियान्वयन की उचित मोनेटरिंग की जाने की व्यवस्था हो। शिक्षकों के पदों की कमी-पूर्ति की जावे तथा तदर्थवाद को समाप्त किया जावे। ❑

राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का 54 वाँ प्रान्तीय अधिवेशन, सीकर (राजस्थान) में संपन्न

श्री कल्याण राजकीय महाविद्यालय सीकर में राजस्थान विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय शिक्षक संघ (राष्ट्रीय) का 54 वाँ द्वि-दिवसीय प्रान्तीय अधिवेशन 31 दिसंबर 2015 व 1 जनवरी 2016 को सम्पन्न हुआ। अधिवेशन के प्रथम दिन दीप-प्रज्वलन और मंगलाचरण के बाद अधिवेशन के उद्घाटन-सत्र में मुख्यवक्ता श्री राममाधव (राष्ट्रीय महासचिव, भाजपा) ने कहा- एकात्म मानववाद एक मुक्त चिन्तन है, यह मानवता-केन्द्रित दर्शन है- चिन्तन है। पं. उपाध्याय ने कहा था कि एकात्म मानववाद में मेरा कुछ भी नहीं है। मैंने तो भारतीय चिन्तकों, महापुरुषों के विचारों का संकलन मात्र किया है अथवा भारत का मूल चिन्तन हमारी परम्पराओं में अभी भी रूप परिवर्तन के साथ वर्तमान है यह एक ऐसी जीवन-पद्धति है, जो देश, काल, व्यक्ति से परे है। वस्तुत: यह हमारे में धर्म तत्त्व के रूप स्थित है, जो अपरिवर्तनीय है। हमारी जीवन-पद्धति को धर्म मात्र नहीं कहा जा सकता है किन्तु हमारे जीवन-दर्शन को धर्म अवश्य कहा जा सकता है जिसमें सभी के सुख की कामना की जाती है एकात्म मानववाद एक ऐसा विचार है, जिसमें सुख सार्वजनिक, सार्वदेशिक, सार्वकालिक और सार्वभौमिक होता है।

कार्यक्रम के मुख्य अतिथि श्री कालीचरण जी सराफ (उच्च शिक्षा मन्त्री, राज.) ने कहा- हम शिक्षकों की प्रत्येक समस्या को दूर करने के लिए कृत संकल्प हैं- महाविद्यालयीय शिक्षकों के पदनाम की घोषणा शीघ्र ही की जाएगी। महाविद्यालय शिक्षकों की डीपीसी, सीएएस का लाभ, पीएच.डी. में कोर्स वर्क की छूट आदि कार्य यथाशीघ्र पूरे किए जाएँगे, अगले सत्र के प्रारम्भ में ही सभी रिक्त पदों को राजस्थान लोक सेवा आयोग के माध्यम से भर दिया जाएगा। हमने यह निर्णय भी लिया है कि आगे सब-डिविजन स्तर तक के स्थानों पर नए राजकीय महाविद्यालय खोले जाएँगे। इससे पूर्व डॉ. नारायण लाल गुप्ता प्रदेश महासचिव रुक्टा (राष्ट्रीय) ने शिक्षकों की सभी प्रमुख समस्यायों को माननीय उच्च शिक्षामन्त्री के सामने रखते हुए कहा- शिक्षकों को विश्वास में लेना आवश्यक है। शिक्षकों की भावनाओं और माँगों का दमन न किया जाए। न ही उन्हें विविध कार्य देकर मशीन बनाया जाए। जब हमारे कार्य आपके माध्यम से स्वीकृत होकर आगे क्रियान्वयन के लिए चले जाते हैं, फिर भी रुक क्यों जाते हैं। हमें उस रुकावट के कारण को जानकर उसका निदान करना होगा।

डॉ. दिग्विजय सिंह शेखावत अध्यक्ष, रुक्टा (राष्ट्रीय) ने यह संगठन मात्र शिक्षक हित की बात नहीं करता है, अपितु यह शिक्षण व्यवस्था और नवाचारों के प्रयोग के प्रति भी पूर्ण समर्पित है- यहाँ विचार और संगठन का सहभाव हमारी परम्पराओं, कर्त्तव्यों आदि के क्रियान्वयन में ही निहित है, स्थानीय सांसद स्वामी सुमेधानंद सरस्वती ने कहा कि जहाँ शिक्षक जागरूक होता है, वह देश आगे बढ़ता है। इसके बाद में सभी अतिथियों ने 'संगच्छध्वं' स्मारिका का विमोचन भी किया। मंच पर मा. जगदीश प्रसाद सिंघल कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर और डॉ. जी.एस.कलवानिया प्राचार्य, श्री कल्याण महाविद्यालय भी मौजूद रहे। राष्ट्र गीत के साथ उद्घाटन-सत्र का समापन हुआ। सायं खुला सत्र एवं साधारण सभा का आयोजन किया गया। महामंत्री डॉ. नारायण लाल गुप्ता द्वारा महामंत्री प्रतिवेदन प्रस्तुत किया गया जिसे सदन द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदित किया गया। प्रांतीय अंकेक्षक डॉ. सोमकांत भोजक ने 31 मार्च 2015 को सम्पन्न वित्तीय वर्ष के आय व्यय विवरण का साधारण सभा द्वारा सर्व सम्मति से अनुमोदित किया गया। साधारण सभा द्वारा तीन प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत किये गए- 1. समाज में सर्वविध समरसता निर्माण हेतु सामूहिक प्रयास किए जाएँ 2. राज्य की उच्च शिक्षा एवं शिक्षकों की समस्याओं का समाधान अविलंब किया जाये। 3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति समग्र चिंतन पर आधारित हो। साधारण सभा द्वारा गत अधिवेशन के पश्चात दिवंगत शिक्षक साथियों को श्रद्धांजली भी दी गई। रात्रिकालीन सत्र में स्थानीय कलाकारों ने देशभक्ति एवं भक्ति रस से सराबोर नाट्य एवं संगीतमय प्रस्तुतियाँ देकर उपस्थित शिक्षकों को भाव विभोर कर दिया।

अधिवेशन के द्वितीय दिन आयोजित शैक्षिक संगोष्ठी के प्रथम-सत्र में मुख्य अतिथि श्री दुर्गादास जी रा. स्व. संघ के क्षेत्रीय प्रचारक ने अपने वक्तव्य में कहा कि भारत में सामाजिक समरसता प्राचीन काल से ही रही है। महर्षि दयानन्द सरस्वती का उदाहरण देते हुए बताया कि स्वामी जी ने हमें सर्वधर्म-सर्वजाति हित की बात कही। उन्होंने राजस्थान का इतिहास दोहराते हुए कहा कि सामाजिक समरसता वर्तमान समाज में प्रासंगिक है। मेड़ता में रैदास का मन्दिर आज भी है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री व राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय कार्यकारिणी सदस्य डॉ. बजरंग लाल गुप्त ने विकास की वास्तविक अवधारणा को उन्होंने सुमंगलम विकास की व्याख्या करते हुए सब को रोटी, सबको स्वास्थ्य, सबको शिक्षा व सबको रोजगार देने की बात कही। कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए एमडीएस विश्वविद्यालय अजमेर के कुलपति प्रो. कैलाश सोढ़ाणी ने कहा कि वर्तमान समय में समाज में सामाजिक-समरसता का भाव जाग्रत करने का कार्य शिक्षक अच्छे तरीके से कर सकते हैं। उन्होंने कहा कि देश में वेद-वन्दना के साथ-साथ राष्ट्र-वन्दना भी होनी चाहिए। संगोष्ठी का संचालन डॉ. राजेन्द्र शर्मा ने किया।

समारोप सत्र के मुख्य-अतिथि राजस्थान-सरकार के राज्य शिक्षा-मंत्री प्रो. वासुदेव देवनानी ने शेखावाटी भूमि को नमन करते हुए कहा कि प. दीनदयाल उपाध्याय की विद्यास्थली और वीरों की जन्म भूमि रही है। उन्होंने साक्षरता व शिक्षा में अन्तर बताते हुए कहा कि वास्तविक शिक्षा वही है जहाँ संस्कार व संस्कृति के बारे में बताया जाये। सत्र की अध्यक्षता करते हुए राजस्थान विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. जे. पी. सिंघल ने कहा कि सामाजिक-समरसता लाने के लिए वैचारिक अधिष्ठान व कर्तव्य-बोध को आधार मानना पड़ेगा। हमारी संस्कृति व प्राचीन ग्रन्थ प्रामाणिकता के भण्डार हैं।

कार्यक्रम के अन्त में आयोजक इकाई के सचिव डॉ. अरविन्द महला ने पधारे हुए सभी पदाधिकारियों व सदस्यों का धन्यवाद ज्ञापित किया। अधिवेशन मे राज्य भर के विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के 1600 से अधिक शिक्षकों ने भाग लिया। अधिवेशन मे अखिल भारतीय राष्ट्रीय शैक्षिक महासंघ के संगठन मंत्री श्री महेंद्र कपूर, रा.स्व. संघ के उत्तर पश्चिम क्षेत्र कार्यवाह श्री हनुमान सिंह पूरे समय उपस्थित रहे।